M.T.V. Acharya

Photo by Pranlal K. Patel

पुरस्कृत
परिचयोक्ति

खेलने का ढंग

प्रेषक :
संतोषकुमार जैन, आगरा

चन्दामामा

विषय-सूची

इनके अलावा फ़ोटो - परिचयोक्ति - प्रतियोगिता,
मन बहलाने वाली पहेलियाँ, सुन्दर चित्र और कई प्रकार के तमाशे हैं।
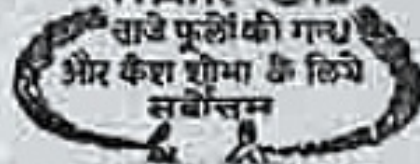
सारे परिवार के लिए

सुप्रसिद्ध कथा - पत्रिकाएँ

★

चांदोबा ... (मराठी)

एक प्रति	वार्षिक	द्वैवार्षिक
०-६-०	४-८-०	८-०-०

चन्दामामा ... (हिन्दी)

एक प्रति	वार्षिक	द्वैवार्षिक
०-६-०	४-८-०	८-०-०

चन्दामामा ... (तेलुगू)

एक प्रति	वार्षिक	द्वैवार्षिक
०-६-०	४-८-०	८-०-०

चन्दामामा ... (कन्नड)

एक प्रति	वार्षिक	द्वैवार्षिक
०-६-०	४-८-०	८-०-०

अम्बुलिमामा ... (तमिल)

एक प्रति	वार्षिक	द्वैवार्षिक
०-६-०	४-८-०	८-०-०

अम्बिलि अम्मावन (मलयाली)

एक प्रति	वार्षिक	द्वैवार्षिक
०-६-०	४-८-०	८-०-०

चन्दामामा प्रकाशन

वडपलनी :: मद्रास २६.
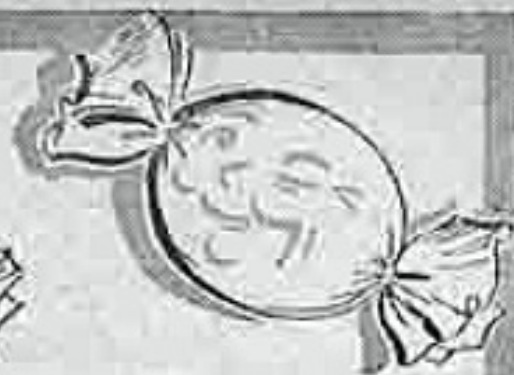
चन्दामामा

संचालक :: चक्रपाणी

हमें यह जान कर बड़ी प्रसन्नता हुई कि पाठकों को दुरङ्गे चित्र बहुत पसन्द आए। अगले महीने से हम कहानियों आदि में भी नवीनता लाने का यत्न करेंगे। हमारे बारम्बार लिखने पर भी बहुत से पाठक परिचयोक्ति-प्रतियोगिता के कूपन वगैरह बन्द लिफाफों में भेज रहे हैं। यह अनावश्यक और फिजूल पैसा बरबाद करना है। यह प्रतियोगिता कोई पहेली नहीं जिसके कूपन छुपा कर भेजने की जरूरत हो। यह तो अपनी-अपनी सूझ है, बुद्धि की दौड़ है। आशा है, पाठक आगे से हमारी प्रार्थना पर ध्यान रखेंगे। पाठकों की चिट्ठियों से पता चलता है कि उन्हें हमारा धारावाही रत्न-मुकुट बहुत पसन्द आया। आशा है कि पाठक आगे भी इसी तरह पत्रों द्वारा सूचित करते रहेंगे कि उन्हें कौन कौन से शीर्षक ज्यादा पसन्द हैं। इस से हम चन्दामामा को और भी लोक-प्रिय बनाने में सफल होंगे।

वर्ष 4 :: अप्रैल 1953 :: अंक 8

फूल और शूल

किसी गांव में बच्चो !
रहती थीं दो बहनें:
थीं सुन्दर दोनों ही
यदपि न थे कुछ गहने ।

रूप एक दोनों का
मगर शील-गुण विभिन्न ।
हँस-मुख थी छोटी, पर
रहती नित बड़ी खिन्न ।

बड़ी देख लोगों को
मन में जलती रहती ।
सब से लड़ चिंता से
यों ही घुलती रहती ।

शांत-प्रकृति की छोटी
कभी नहीं झुंझलाती ।
सब से हिल-मिल रहती,
किसी पर न चिल्लाती ।

एक सांझ जल भरने,
घड़े बगल में धर कर,
चलीं कुएँ पर बहनें
गप-शप करतीं पथ पर ।

एक परी ने देखा
दोनों को आते जब,
'क्यों न परीक्षा इनकी
लूँ ?' सोचा उसने तब ।

वैरागी

और एक बुढ़िया का
धर लिया तुरन्त रूप ।
खड़ी हो गई आकर
उन बहनों के समीप ।

'प्यास लगी है बेटी!
जोरों की; हूँ दुर्बल ।
दूर न जा सकती हूँ,
पिला मुझे थोड़ा जल!'

बुढ़िया बोली । तुरन्त
बड़ी बहन झल्लाई ।
'जा, जा, री! किसको है
फुरसत?' वह चिल्लाई ।

लेकिन झट छोटी ने
बुढ़िया को पिला नीर,
मीठी बातों से मन
की हर ली सभी पीर ।

सहसा धर परी-रूप
खड़ी हो गई बुढ़िया ।
दोनों के गुण विचार
उसने फैसला दिया ।

कहा—'बड़ी के मुँह से
बरसेंगे सदा शूल ।
पर छोटी के मुँह से
बरसेंगे मृदुल फूल ।'

सुख-चित्र

सुदामा एक गरीब ब्राह्मण था। बड़ा ही संतोषी और प्रसन्न स्वभाव का जीव था। गरीबी के साथ साथ बाल-बच्चे भी बहुत ज्यादा थे। इसलिए गिरस्ती का बोझ ढोना बहुत मुश्किल हो गया था। सुदामा भगवान कृष्ण का बचपन का मित्र और सहपाठी भी था। यह बात उसकी पत्नी को भी मालूम थी। इसलिए उसने एक दिन अपने पति से कहा—'नाथ! भगवान कृष्ण आप के सखा हैं न? उनसे बढ़ कर हितू कौन मिलेगा? आप जाकर उनके दर्शन क्यों नहीं कर आते? उनके दर्शन-मात्र से हमारे सारे कष्ट दूर हो जाएँगे।' सुदामा ने सोचा—'चलो, इस बहाने कम से कम मित्र के दर्शन तो हो जाएँगे।' वह चलने को तैयार हो गया। लेकिन फिर सोचा कि खाली हाथ कैसे जाऊँ? तब उसकी पत्नी पड़ोसियों के घर जाकर मुट्ठी भर चिउड़े माँग लाई। उसने सुदामा के अंगोछे के छोर में चिउड़ों की पोटली बाँध दी। सुदामा उस पोटली को हिफाजत से काँख में दबा कर रवाना हुआ और कुछ दिन बाद द्वारका जा पहुँचा। ज्यों ही भगवान कृष्ण को सुदामा के आने की खबर मालूम हुई, वे स्वयं बाहर दौड़े आए और बड़े प्रेम से उसे अंदर ले गए। उन्होंने उसे सेज पर अपनी बगल में बिठाया और बातें करने लगे। बचपन की स्मृतियों में दोनों मित्र सारा संसार भुला बैठे। भगवान कृष्ण ने स्वयं थके-माँदे सुदामा के पैर दबाए। देवी रुक्मिणी अपने कर-कमलों से पंखा झलने लगीं। आखिर भगवान कृष्ण बोले—'अच्छा भई! मेरे लिए क्या क्या ले आए हो?' लेकिन चिउड़े की पोटली खोल कर देने में सुदामा को संकोच होने लगा। तब भगवान कृष्ण ने स्वयं पोटली ले ली और खोल कर बड़े प्रेम से खाने लगे। यह देख कर लोगों के विस्मय का ठिकाना न रहा। कुछ दिन बाद जब सुदामा अपने गाँव लौटा तो उसे अपनी झोंपड़ी के स्थान पर एक विशाल, भव्य भवन दिखाई दिया। बेचारा हैरान रह गया कि मेरी झोंपड़ी क्या हो गई? तब गहनों से लदी हुई उसकी पत्नी बाहर आई और उसे अंदर ले गई। उनकी सारी गरीबी दूर हो गई थी। भगवान कृष्ण की कृपा से उनका जीवन सुख से कटने लगा और वे कभी कृष्ण की मित्र-वत्सलता नहीं भूले।

किसी समय पवित्र पण्डरीपुर में कमलाकर नाम का एक ब्राह्मण रहा करता था। वह सभी शास्त्रों में पारंगत था। उसकी स्त्री सुमति भी बड़ी पतिव्रता और सुशीला थी। इन दम्पति के एक ही लड़का था जिसका नाम पद्माकर था।

कमलाकर बहुत गरीब था। भिक्षाटन करके अपनी जीविका चलाया करता था। मगर भगवान में उसका विश्वास अचल था और उसकी भक्ति दृढ़ थी।

एक दिन कमलाकर भिक्षा के लिए जा रहा था कि राह में उसे तुकाराम, नामदेव आदि सुप्रसिद्ध भक्तों का दल संकीर्तन करते हुए दिखाई दिया।

उन्हें देख कर कमलाकर को बहुत खुशी हुई। उसने कहा—'महात्मा-गण! आज कैसा सुदिन है! यह तो मेरे पूर्व-जन्म का पुण्य-फल है कि आज आप सब के दर्शन एक साथ हो गए। इस दीन पर कृपा करके चलिए और हमारे दरिद्र-गृह को पावन कीजिए।' उसने भक्ति-गद्गद होकर उन भक्तों से कहा।

तब उन भक्तों ने कहा—'भैया कमलाकर! हमें तुम्हारे वचन सुन कर बड़ी प्रसन्नता हो रही है।

लेकिन तुम्हारी हालत हम से छिपी नहीं है। तुम स्वयं ही भिक्षाटन करके जीविका चलाते हो। हम सब को कैसे खिलाओगे तुम? बेकार हैरान न होओ! तुम्हारा प्रेम ही हमारे लिए काफी है।'

लेकिन उनकी बातें सुन कर कमलाकर को बहुत खेद हुआ। उसने कहा—'आप यह क्या कहते हैं? है तो यह सत्य कि मैं बड़ा ही दरिद्र हूँ और भीख माँग कर अपने परिवार का पेट पालता हूँ। लेकिन मेरी माता देवी रुक्मिणी और मेरे पिता भगवान

कृष्ण बड़े धनवान हैं। उनकी कृपा से आप को किसी चीज़ की कमी न होने पाएगी। इसलिए आप कृपा करके मेरी प्रार्थना स्वीकार कर लीजिए और मेहमान बन कर मेरे घर चलिए!' कमलाकर हाथ जोड़ कर बड़े ही दीन-भाव से बोला।

भगवान कृष्ण में कमलाकर का ऐसा भरोसा देख कर भक्त लोग बहुत प्रसन्न हुए। बोले—'अच्छा! भैया! अब हमें कोई उज्र नहीं रहा। हम जाकर चन्द्रभागा नदी में स्नान-पूजा कर आते हैं। तुम भी सीधे घर जाकर अपनी तैयारियों में लगे रहो!' भक्त लोगोंने कहा और नदी की ओर चले।

कमलाकर प्रसन्न-चित्त से घर लौट आया और जाकर पत्नी को यह खबर सुना दी। सुमति बहुत खुश हुई। वह पड़ोसिनों के घर जाकर चावल-दाल माँग ले आई और रसोई में लग गई।

रसोई पूरी होने के पहले ही लकड़ियाँ चुक गईं। तब सुमति ने बेटे को बुला कर कहा—'बेटा! लकड़ियाँ चुक गईं। उधर कोने में कंडे पड़े हैं। जाकर जरा ला दे बेटा!'

पद्माकर कंडे लाने के लिए दौड़ा गया। लेकिन वहाँ एक काले साँप ने, जो न जाने, कितने दिन से वहाँ आसन जमाए बैठा था, उसे काट खा लिया। बेचारा एक बार 'माँ!' कह कर जमीन पर गिर पड़ा। उसने तड़प तड़प कर जान छोड़ दी।

उसकी पुकार सुन कर माता दौड़ी आई। यह दृश्य देख कर वह घबरा गई। बच्चे का बदन छूकर देखा तो मालूम हुआ कि जान नहीं है। बेचारी बहुत विह्वल हो गई।

लेकिन यह शोक करने का समय नहीं था। उधर मेहमान लोग आने वाले थे। इसलिए उसने छाती पर पत्थर धर कर, बेटे को वहीं लिटा दिया और जाकर चुपचाप अपने काम में लग गई।

थोड़ी देर में रसोई बन गई। भक्त-गण स्नान करके भगवान का नाम लेते हुए कमलाकर के घर आए।

कमलाकर ने उनका प्रेम-पूर्वक स्वागत किया और पत्तल बिछा कर उनसे आसनों पर विराजने की प्रार्थना की।

आसनों पर बैठते ही भक्तों ने पूछा—'कमलाकर! तुम्हारा लड़का नहीं दिखाई देता। कहाँ गया वह? उसे भी बुलाओ!' लेकिन कमलाकर चुप रह गया। तब भक्त लोगों ने ध्यान लगाया और अपनी दिव्य-दृष्टि से सारा हाल जान लिया। 'लड़के को बुलाओ! वह भी हमारे साथ खाने बैठेगा!' नामदेव ने कहा।

कमलाकर की जान मुश्किल में पड़ गई। अगर इन्हें मालूम हो गया कि पद्माकर मर गया है तो शायद ये लोग आसन से उठ कर चल देंगे। अपुत्र के घर कौन भोजन करता है? इसलिए उसने कहा—'भाइयो! थोड़ी देर पहले ही खा लिया था उसने। आप लोग उसकी चिन्ता न कीजिए।' इस तरह उसने बहाना बनाया। लेकिन नामदेव ने, जिन

से कोई बात छिपी नहीं थी, हठ किया—'नहीं, नहीं, उसे अपने साथ बिठाए बिना हम कौर नहीं उठाएँगे!' अब तो कमलाकर धर्म-संकट में पड़ गया। कोई उपाय न सूझा। आखिर वह करुणामय पण्डरी-नाथ की प्रार्थना करने लगा। भगवान ने ध्यान में प्रत्यक्ष होकर पूछा—'प्यारे कमलाकर! क्या चाहते हो?'

'देव! मेरे घर मेहमान आए हैं। वे चाहते हैं कि मेरा बेटा भी उनके साथ खाने बैठे। लेकिन मेरा बेटा थोड़ी देर पहले ही मर गया है। इसलिए देव! मेरे लड़के को थोड़ी देर के लिए जिला दो जिस से वह भी भक्तों के साथ खाने बैठे और कार्य सफल हो जाए। इस के अलावा मैं और कुछ नहीं चाहता!' कमलाकर बोला।

भगवान ने कहा—'अच्छा जाओ, तुम्हारी इच्छा पूरी हो जाएगी।' और अंतर्धान हो गए।

तुरंत उधर पद्माकर चिर-निद्रा से जाग उठा और 'माँ! बड़ी प्यास लगी है!' कहते हुए सीधे उस जगह चला आया, जहाँ भक्त-गण भोजन करने बैठे हुए थे।

माता सुमति ने दौड़ कर आनन्द से उसे गले लगा लिया और भक्तों से कहने लगी—'महात्मा! आप ही लोगों की कृपा से मेरा लड़का वापस मिल गया। आप लोग भगवान के समान हैं। नहीं तो मरे हुए को और कौन जिला सकता है!' यों उसने अनेक प्रकार से भक्तों की प्रशंसा की और अपनी कृतज्ञता जताई।

पद्माकर को अपने साथ बिठा कर भक्तों ने हर्ष के साथ भोजन किया। अंत में उन्होंने कमलाकर को तारक-मन्त्र का उपदेश दिया और उसकी अविचल भक्ति की बहुत प्रशंसा करके बड़े प्रेम से बिदा ली।

कमलाकर की अटल भक्ति का ही प्रभाव था कि उसका मृत पुत्र भी पुनर्जीवित हो गया।

4

उसी समय एक नौकर हाँफते हुए दौड़ा आया। 'हुजूर! किरातराज और अर्धपाल की लाशें मिल गईं।' उसने कहा।

राजगुरु ने एक सुख की साँस ली, जैसे कोई भारी बोझ उसके सिर से हट गया हो। 'अच्छा, अब खोज-ढूँढ कर उस छोकरे का पता लगाना है।' उसने कहा। इतने में सिपाही युद्ध-क्षेत्र से किरात-राज और अर्धपाल की लाशें ढोकर ले आए।

इधर बेचारे मन्दपाल के मन में बहुत खेद हो रहा था। लेकिन वह कुछ नहीं कह सकता था। पिता के मरने की खबर सुन कर उसको बहुत दुख हुआ, यह तो राजगुरु भी भाँप गया। वह सोचने लगा— 'यह है तो स्वाभाविक; मगर आगे चल कर यही संकट का मूल बनेगा।'

यह बुरी खबर सुन कर जेल में हर्षपाल विह्वल होने लगा और अर्धपाल की पत्नी बेहोश हो गई।

इन दोनों के मरने की खबर सुन कर सामन्तों में अगर किसी को दुख हुआ तो वह अमरसिंह को। बेचारे की बिटिया कैद में थी। नन्हा नाती भी लापता हो गया था। दामाद मारा गया था; विपदाएँ सभी एक साथ टूट पड़ी थीं।

ऐसी हालत में राज-तिलक के उत्सव में भाग लेने की उसकी तनिक भी इच्छा न थी; लेकिन मजबूर था। नहीं तो अन्य सामन्तों

को उस पर ज़रूर शक हो जाता। उस बेचारे की काया ही उत्सव में भाग ले रही थी। मन वहाँ नहीं था।

राजगुरु ने जल्दी-जल्दी राज-तिलक का सारा प्रबन्ध कर लिया था। बड़ी धूम-धाम मची हुई थी। ऐसे समय मगध से एक दूत अमरसिंह के पिता के देहान्त की खबर ले आया। बेचारा अमरसिंह और भी व्याकुल हो गया। वह राजगुरु और मन्दपाल को यह समाचार सुना कर, इजाजत लेकर, उसी समय अपने राज्य को लौट गया। लेकिन उसका सारा मन अपने नाती पर लगा हुआ था।

यथा-समय मन्दपाल का राज-तिलक हो गया। धीरे धीरे सब लोग अपने अपने घर लौट गए।

इस उत्सव में जनता ने भाग तो लिया; लेकिन राजी-खुशी नहीं। मल्लाण-राज के निवासियों के मन में बड़ी खलबली मची हुई थी। राजा हर्षपाल की हार क्योंकर हुई, इस में राजगुरु और मन्दपाल के कुचक्रों का कहाँ तक हाथ था, यह सब को अच्छी तरह मालूम हो गया था। हर्षपाल और अर्थपाल की पत्नी के कैद होने, अर्थपाल और किरातराज के मारे जाने और भोले चित्र-भानु के लापता हो जाने से जनता में असंतोष फैलने लगा था।

'हमारे राजा को छोड़ दो! हमारी रानी को छोड़ दो! हर्षपाल को फिर से राजा बना दो!' आदि नारे जगह जगह लगने लगे थे।

मन्दपाल से कुछ भी न हो सका। हाँ, राजगुरु ने इस आन्दोलन को दबा देने की पूरी कोशिश की। इतना ही नहीं, उसने जनता का असंतोष दूर करने के ख्याल से यह घोषणा भी कर दी कि लोगों की सारी शिकायतों पर पूरा ध्यान दिया जाएगा।

लेकिन इसका भी कुछ नतीज़ा न निकला। तब राजगुरु को बहुत क्रोध आ गया और वह जनता को सताने लगा। लेकिन यह भी कारगर साबित न हुआ।

तब राजगुरु को मालूम हो गया कि अत्याचार करने से जनता नहीं दबेगी। आखिर खूब सोचने-बिचारने के बाद उसने एक उपाय ढूँढ निकाला। उसने सोचा—'सात बरस तक सब तरह के कर उठा दूँगा तो जरूर राज में आनन्द छा जाएगा और लोगों का सारा असन्तोष दूर हो जाएगा। लेकिन सारे कर उठा देने से राज का काम-काज़ कैसे चलेगा?' इसलिए राजगुरु ने खूब सोच-विचार कर सामन्तों को इस प्रकार एक सूचना भेजी—'आप लोगों ने अकारण जो लड़ाई छेड़ दी, उस में भल्लाण के निवासियों का बहुत नुकसान हुआ। खेती-बारी चौपट हो गयी। घर-बार उजड़ गए। कितने ही लोगों की रोजी चली गई। आज हमारी प्रजा बहुत मुश्किल में है और प्रजा की रक्षा करना राजा का कर्तव्य है। इसलिए हम ने खूब सोच-विचार कर यह निश्चय किया है कि भल्लाण में सात बरस तक सब तरह का कर उठा दिया जाए। इस से प्रजा की आर्थिक दुर्दशा कुछ हद तक दूर हो जाएगी। इस निश्चय को कार्य-रूप देने के लिए आप सब की सहायता आवश्यक है। इस युद्ध के कारण हमारी भी बड़ी आर्थिक क्षति हुई है। इसलिए हम चाहते हैं कि आप सभी इस साल से दुगुना कर चुकाएँ!' उस सूचना में लिखा था।
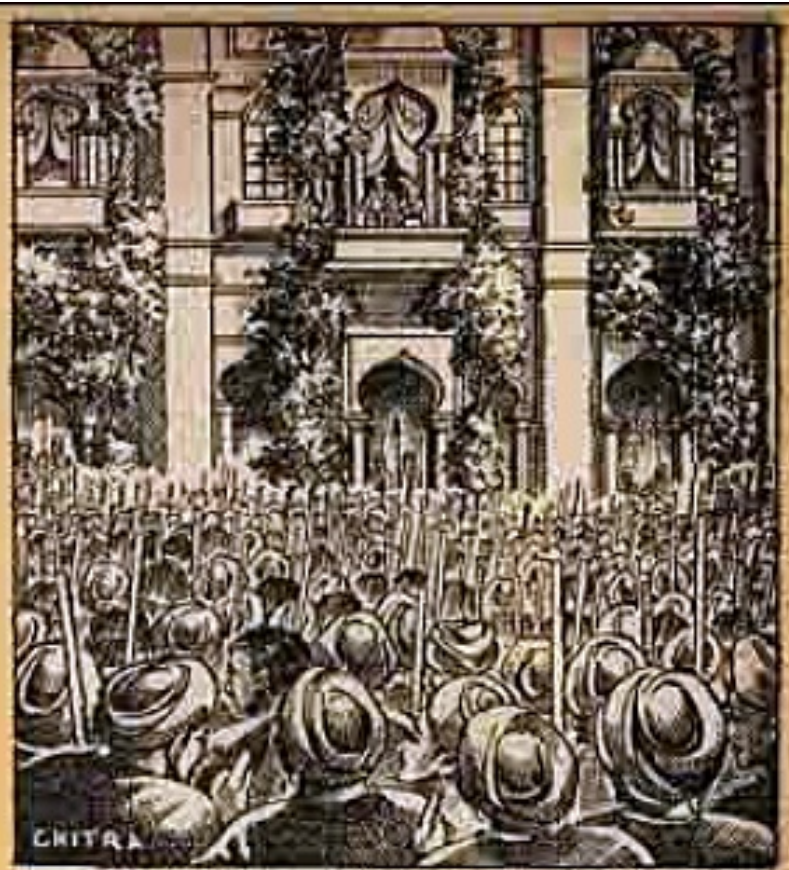
सूचना पाते ही सामन्त सभी गुर्जर-राज के नेतृत्व में एक जगह इकट्ठा हो गए। वे सब अब अपनी करनी पर पछता रहे थे। बड़ी देर तक चर्चा हुई। लेकिन कोई नतीज़ा न निकला। आखिर उन सब ने अमरसिंह से प्रार्थना की कि 'आप हमें इस संकट से

बचाएँ!' तब अनुभवी अमरसिंह ने सोच-विचार कर कहा—'यह समय ही ऐसा है कि उतावली करने से काम नहीं चलेगा। हम लोग यहाँ उतावली करेंगे तो वहाँ हर्षपाल और अर्धपाल की पत्नी की जान पर आ बनेगी। क्योंकि राजगुरु बड़ा जालिम है। ऐसा कोई भी कुकर्म नहीं जिसे करने में वह हिचकिचाए। इसलिए हमें छुपे-छुपे कार्रवाई करनी होगी। पहले खोज-ढूँढ कर अर्धपाल के नन्हे बच्चे का पता लगाना होगा और उसकी रक्षा करनी होगी। पीछे जो करना होगा करेंगे।' उपस्थित सामन्तों को भी अमरसिंह की सलाह बहुत पसन्द आ गई। उन लोगों ने तुरन्त अपने अपने राज्यों में चारों ओर गुप्तचर भेज कर अर्धपाल के पुत्र की खोज शुरू कर दी।

अमरसिंह की सलाह के अनुसार सामन्त लोगों ने राजगुरु की सूचना का यह उत्तर लिख भेजा—'आज तक आपने हमें जो कुछ सिखाया-पढ़ाया, वही हमने किया। लड़ाई में हम लोगों का भी कुछ कम नुकसान नहीं हुआ। आखिर वह लड़ाई भी हमने छेड़ी थी आप ही के कहने से। आप ही ने हमें सिखाया था कि रत्न-मुकुट-हीन राजा को कर चुकाने की कोई जरूरत नहीं। हमने कभी स्वप्न में भी नहीं सोचा था कि आप इतने थोड़े समय में इस तरह बदल जाएँगे और लड़ाई के मैदान से लौटते ही अपने वादे भूल कर, हमें इस तरह दुगुना कर चुकाने का आदेश देंगे। हमारा विश्वास था कि भल्लाण पर कब्ज़ा होते ही आप अपने सारे वादे पूरा करेंगे और हमें स्वतन्त्र बना देंगे। हमने कभी नहीं सोचा था कि आप हमारी भलाई का बदला इस तरह चुकाएँगे। आपने हमारी सारी आशाओं पर पानी फेर दिया। सारे मनसूबे मिट्टी में मिला दिए। हमें विश्वास नहीं रहा कि

अब आप हमारी विनतियों पर तनिक भी ध्यान देंगे। इसलिए हम और ज्यादा लिख कर रोशनाई खराब करना नहीं चाहते।'

सामन्तों का यह जवाब देख कर राजगुरु गुम रह गया। उसे न सूझा कि क्या किया जाय! आखिर उसने सोचा—'यह चाल नहीं चली। अब कोई दूसरा ही उपाय सोचना पड़ेगा।'

इधर जनता में असंतोष तो फैला ही हुआ था। उधर अब सामन्त-गण भी उसके खिलाफ हो गए थे। ज्यादा दबाव डालने से वे लोग बगावत का झंडा खड़ा कर देते और लड़ाई लाज़िमी हो जाती। हर्षपाल और अर्थपाल की पत्नी को छोड़े बिना जनता का भी असंतोष दूर होने वाला नहीं था। इन दोनों को छोड़ देने पर बात ही बिगड़ जाती। इस तरह राजगुरु की सांप-छुछुन्दर की सी हालत हो गई। ऐसी हालत में उसे एक अच्छा उपाय सूझ गया। लेकिन वह था ऐसा कि मन्दपाल कभी राजी नहीं होता।

इसलिए राजगुरु ने अपने बेटे को बुलाया और मन की बात उसे बता दी। वह तुरन्त अपने पिता की इच्छा पूरी करने के लिए तैयार हो गया। इतना ही नहीं: उसने कहा—'अगर यही चाल चल गई तो मेरा चिरकाल का मनोरथ सफल हो जायगा। भलाण का सिंहासन हमारे अधिकार में आ जाएगा।'

ज्यों ही लड़के के मुँह से यह बात निकली त्यों ही राजगुरु का मन डाँवाडोल हो गया। संयोग देखिए कि उसी समय उसे चित्रभानु के मरने की झूठी खबर भी मिल गयी। बस, राजगुरु ने किसी न किसी तरह मन्दपाल को गद्दी से हटा कर, अपने बेटे को उस पर बिठाने का निश्चय कर लिया। अब बाप-बेटे दोनों मिल कर मन्त्रणा करने और कुचक्र रचने लगे।

दूसरे ही दिन दोनों ने अपना इरादा पूरा करने का सारा प्रबन्ध कर लिया। 'आप कुछ चिंता न कीजिए पिताजी! मैं सारा काम सम्हाल लूँगा।' राजगुरु के लड़के ने अपने पिता से कहा। बेटे की चतुरता और साहस देख कर राजगुरु को बहुत प्रसन्नता हुई। वह मन की मन हवाई महल बनाने और अपने लाड़ले लड़के को राज-गद्दी पर बिठाने के स्वप्न देखने लगा।

अपने पिता की सलाह के अनुसार राज-गुरु के लड़के ने उसी रात कुछ विश्वास-पात्र सेवकों को कारागार में, जिस में हर्षपाल और अर्धपाल की रानी आदि थे, आग लगाने की आज्ञा दे दी। उसने उन्हें स्वयं बता दिया कि किस किस जगह पहले आग लगा देनी होगी। इस बात की किसी के कान में भनक तक न पड़ने पाई। समय पर आग लगा दी गई। देखते-देखते लपटें धू-धू कर नाचने लगीं। इतने में राजगुरु के लड़के को जो वहीं खड़ा यह दृश्य देख कर आनन्दित हो रहा था, एक संशय हुआ। उसने सोचा—'कहीं हर्षपाल और अर्धपाल की पत्नी के कमरों में आग न लगी तो?' ज्यों ही यह संशय उठा, वह बेचैन होकर जेल के अन्दर चला गया और जानने की कोशिश करने लगा कि उन कमरों में आग लगी कि नहीं। इतने में जलती हुई छत से एक शहतीर टूट कर गिरी और राजगुरु का कुल-दीपक और लाड़ला लड़का उसके नीचे दब कर मर गया।

ज्यों ही जेल में आग लगने की खबर चारों ओर फैल गई त्यों ही सब लोग हड़बड़ा कर उठे और दौड़े आए। वे सभी पागलों की तरह चिल्लाने और चीखने लगे। जिन जिन लोगों के प्रिय बन्धु-गण उस कारागार में बन्दी थे उनके शोक का तो कोई ठिकाना ही न था।

लेकिन निर्दई अग्निदेव ने उनके हा-हा-कार को अनसुना कर दिया। वे चुपचाप अपना काम करते ही गए। लपटें उठ कर आसमान चूमने लगीं और उस जगह दिन की सी रोशनी होने लगी।

कुछ साहसी व्यक्ति पानी भर लाए। और कुछ लोग अन्दर घुस गए और दरवाजे तोड़ कर अभागे बन्दियों को छुड़ाने की कोशिश करने लगे।

जब यह खबर किले में पहुँच गई तो मन्दपाल बहुत व्याकुल हो गया। 'यह दुर्घटना है या किसी दुष्ट की करतूत? जेल में आग कैसे लग गई? न जाने, बेचारे हर्षपाल और अर्घपाल की पत्नी की क्या हालत हुई होगी! लोग क्या कहेंगे? शायद वे कहेंगे कि मैंने ही आग लगवा दी। इन दिनों ऐसी अफवाह फैलते ज्यादा देर नहीं लगती!' आदि बातें सोचते हुए व्याकुल मन्दपाल कारागार की तरफ दौड़ा। लोगों के बहुत मना करने पर भी वह अन्दर घुस गया और पूछ-ताछ करने लगा कि आग कैसे लग गई। इतने में कुछ लोग हर्षपाल और अर्घपाल की पत्नी की लाशें ढोकर सामने ले आए। यह देख कर सब लोग सन्न रह गए। उन दोनों के तड़प तड़प कर मर जाने की कल्पना करके लोगों के रोएँ खड़े होने लगे। ऐसी दुर्दशा न जाने, कितनों की हुई थी!

इतने में राजगुरु भी वहां आया। वह किसी को ढूँढते हुए अन्दर गया और चारों ओर घूमने लगा। बेचारे के होश ठिकाने नहीं थे। नज़रें पागलों की सी भटक रही थीं। इतने में उसकी निगाह अपने लड़के पर पड़ी, जो शहतीर के नीचे दब कर मरा पड़ा था। वह तुरन्त पछाड़ खा कर कालिख भरी जमीन पर गिर पड़ा। लोग भय से कांपने लगे।

इधर माता को छोड़ कर जाने के बाद बालक चित्रभानु को 'मित्रानन्द' नाम के तपस्वी के दर्शन हो गए थे। ये तपस्वी और कोई नहीं, वही थे जिन्होंने इस कहानी के प्रारंभ में राजा हर्षपाल के लिए एक मन्त्रित-फल भेजा था।

तपस्वी मित्रानन्द कुछ दिनों से उसी जङ्गल में, जिस में यह बालक भटक रहा था, एक आश्रम बना कर रहने लगे थे। नदी किनारे जाते वक्त संयोग-वश उनकी नज़र चित्रभानु पर पड़ गई। उन्होंने उस बालक को देखते ही अपनी दिव्य-दृष्टि से सारा हाल जान लिया। 'बेटा! मेरे साथ आओ!' कह कर वे उसे अपने साथ आश्रम को ले गए।

चित्रभानु उनके यहां पलने और अन्य चेलों की तरह शिक्षा-दीक्षा पाने लगा। वह निकला बड़ा तेज़। कुछ ही दिनों में सब से आगे बढ़ गया। तपस्वी की भी उस पर बड़ी कृपा थी। वे उसे घुड़सवारी, अस्त्र-शस्त्र चलाना, तीर चलाना आदि क्षत्रियोचित विषय सिखा रहे थे और सब तरह से राज-कुल के योग्य ही शिक्षा दे रहे थे।

इस तरह दस साल तक मित्रानन्द के आश्रम में रह कर, चित्रभानु एक प्रवीण धनुर्धर और कुशल योद्धा बन गया। उसमें बड़े शूर-वीर और प्रतापी राजा के लक्षण दिखाई देने लगे। साथ ही उस में नए देश देखने, साहस-पूर्ण कार्य करने और संसार में नाम कमाने का भी चाव पैदा हो गया। वह कठिन से कठिन कार्य करने में भी घबराता नहीं था। वीरता और शूरता में तो अपने से बड़ी उमर वालों को भी मात करता था! वह तपस्वी के अन्य चेलों के लिए आदर्श बन गया था।

इस तरह कुमार चित्रभानु की शिक्षा-दीक्षा पूर्ण हो गई। वह समस्त विद्याओं में पारंगत हो गया। लेकिन—

[सशेष]

किसी गाँव में 'झगड़ालू झुनिया' नाम की एक औरत रहती थी। बिना किसी वजह हर रोज़ गाँव वालों से झगड़ने और कोसने के कारण ही उसका ऐसा नाम पड़ गया था। उसके मारे सब की नाक में दम था।

एक दिन गाँव के बड़े-बूढ़े सभी पुराने पीपल के नीचे जमा हुए। उन्होंने बड़ी देर तक सोच-विचार कर अन्त में निश्चय किया कि झुनिया को गाँव से निकाल देना चाहिए। उन्होंने कुछ रुपया जमा किया और ढिंढोरा पिटवा दिया कि 'जो झगड़ालू झुनिया को लड़ाई-झगड़े में हरा कर भगा देंगे, उन्हें यह रकम ईनाम मिलेगी।'

ईनाम का नाम सुन कर बहुत से लोगों का मन ललचा गया। लेकिन यह विश्वास किसी को न था कि वे झुनिया को झगड़े में जीत सकेंगे। इसलिए कोई आगे न बढ़ा।

उसी गाँव में बलराज नाम का एक बूढ़ा आदमी रहता था। उसके इकलौते लड़के का नाम धनराज और पतोहू का नाम प्रकाशो था। प्रकाशो की उम्र ज़्यादा न थी; लेकिन वह थी बड़ी चालाक। गाँव वालों का ढिंढोरा सुनते ही उसने पति से कहा—'झुनिया को हरा कर गाँव से भगा देने का बीड़ा मैं उठा सकती हूँ!'

धनराज को उसकी बात सुन कर हँसी आई। उसने पत्नी से कहा—'अरे, झुनिया का नाम सुनते ही बड़े-बड़ों की नानी मर जाती है! तू है किस खेत की मूली! बेकार की झँझट मोल न ले! इस ईनाम के बिना भी हमारा काम चल जाएगा!'

मगर प्रकाशो ने ज़िद पकड़ी। उसने इस बार ससुर से जाकर कहा कि 'झगड़ालू झुनिया को मैं हरा दूँगी।' ईनाम के लालच से बलराज ने उसका कहना मान भी लिया।

कृष्णकुमारी

उधर कुछ लोगों ने आकर झुनिया को खबर दे दी। वह तो बस, आग-बबूला हो गई। 'कौन है वह जो मुझसे झगड़ने चली है! अभी चखा देती हूँ उसे मज़ा!' कहती हुई वह नदी किनारे चली।

थोड़ी ही देर में नदी किनारे गाँव वाले सभी जमा हो गए। कुछ लोग तमाशा देखने के ख्याल से और कुछ लोग इस आशा से कि झगड़ालू झुनिया हार जाएगी। प्रकाशो को देख कर वे सब चकित रह गए।

'यह नादान लड़की इस खूँसट बुढ़िया से कैसे झगड़ेगी?' सब लोग सोचने लगे।

झगड़ा शुरू हो गया। झुनिया भर्राए हुए गले से अपनी अज्ञात प्रतिद्वंदिनी को कोसने लगी। उसके मुँह से गालियों की बौछार होने लगी। प्रकाशो नाव में चुपचाप खड़ी रही। उसके मुँह से एक भी शब्द न निकला। हाँ, उसने अपने हाथ का झाड़ू झुनिया की ओर दिखा कर हिलाया। इस से झुनिया का क्रोध और भी बढ़ गया। उसके मुँह से गन्दे शब्दों का परनाला और भी जोर से बहने लगा। फिर भी प्रकाशो ने मुँह न खोला। हाँ, इस बार वह अपने बाएँ हाथ का पुराना जूता झुनिया की ओर दिखा कर, धमकाने लगी।

अब सवाल यह था कि इन दोनों में प्रतियोगिता कहाँ हो! प्रकाशो ने खूब सोच-विचार कर एक उपाय सुझाया। उसने बताया—'नदी का किनारा इस प्रतियोगिता के लिए अच्छा रहेगा। ज्यादा दूर भी नहीं। एक पुराने जूते और एक झाड़ू के अलावा मुझे और कुछ नहीं चाहिए।'

सारा इन्तजाम कर लिया गया। प्रकाशो नदी में एक नाव पर चढ़ कर खड़ी हो गई। उसके बाएँ हाथ में एक पुराना जूता था और दाएँ में एक झाड़ू। उसने अपना मुँह घूँघट में छुपा लिया था जिससे झुनिया को मालूम न हो कि उसकी प्रतिद्वंदिनी कौन है?

बस, झुनिया क्रोध से जल-भुन गई। गालियाँ देते देते उसका गला सूखने लगा। फिर भी वह प्रकाशो को कोसती ही रही। प्रकाशो चुपचाप जूते और झाड़ू के इशारे से उसको जवाब देती रही।

थोड़ी देर तक यह तमाशा देखने के बाद सब लोग हँसने लगे। हँसते-हँसते सब का पेट फूलने लगा। इधर झुनिया का गला फिर सूख गया। वह नदी का पानी पी-पी कर प्रकाशो को कोसने लगी। यह देख कर लोगों को और भी हँसी आने लगी।

थोड़ी देर में झुनिया का गला इतना भर्रा गया कि आवाज सुनाई न देती थी। प्रकाशो जैसे की तैसी चैन से खड़ी थी।

तब कहीं बेचारी झुनिया को मालूम हुआ कि उसकी हार हो रही है। इस अजीब दुश्मन का कैसे मुकाबला किया जाय, यह उसकी समझ में न आया। जो उसकी गालियों का जवाब ही न दे, उसे कैसे हराए वह! तमाशा देखने जो जो लोग आए थे, सभी उसको देख कर हँस रहे थे; इस से उसे और भी चिढ़ हो रही थी। जो लोग उसे दूर से देख कर काँपते और भाग जाते थे, वे आज उसका मजाक उड़ा रहे थे।

'ऐसे अभागे गाँव में मैं नहीं रहूँगी!' यह सोच कर झगड़ालू झुनिया वहाँ से न जाने, कहाँ चली गई।

गाँव वालों ने प्रकाशो का बहुत सम्मान किया। लोगों ने उसकी सूझ-बूझ को बहुत सराहा। उसने झगड़ालू झुनिया को बात ही बात में हरा कर भगा दिया था। गाँव के बड़े-बूढ़े पीपल के नीचे फिर जमा हुए। उन्होंने ईनाम की रकम दुगुनी करके प्रकाशो को देने का निश्चय किया।

उस दिन से प्रकाशो के ससुर की गरीबी दूर हो गई। वे सभी बड़े चैन से जिन्दगी बिताने लगे।

किसी समय धर्मदत्त नाम का एक वैश्य-पुंगव रहता था। उसके राजदत्त और धनदत्त नाम के दो लड़के थे।

धर्मदत्त पहले था तो बड़ा गरीब। लेकिन इसे उसकी खुशकिस्मती का जोर कहिए या अक़्लमन्दी का, अन्त में उसने करोड़ों कमाए। आज ऐसा कोई महा-सागर नहीं था, जिस की छाती पर धर्मदत्त के जहाज न खेलते हों; ऐसे कोई महाद्वीप नहीं थे, जिन्हें धर्मदत्त के विश्वास-पात्र सेवकों ने छान न मारा हो; संसार में व्यापार की ऐसी कोई जिन्सें नहीं थीं, जिनके जरिए उसने थोड़ा-बहुत रुपया न कमाया हो।

धर्मदत्त की उम्र पचास से ज्यादा हो गई थी। उसके दोनों लड़के भी सयाने हो गए थे। व्यापार का सारा गुर जान कर वे अपने पिता की बड़ी मदद कर रहे थे। धर्मदत्त सब तरह की चिन्ताओं से मुक्त हो गया था। फिर भी न जाने क्यों, उसका मन कुछ सूना-सूना सा रहता था।

एक दिन उसने सोचा—'मेरे दोनों बेटे बड़े हो गए हैं। अब उन्हें मेरे परामर्श की कोई आवश्यकता नहीं। मैं भी बूढ़ा हो गया हूँ। लेकिन आज तक मैं किसी की कोई भलाई नहीं कर सका हूँ। बहुत से लोग ऐसे होंगे जिन्हें व्यापार के सिलसिले में मैंने नुकसान पहुँचाया होगा। अगर उनमें से किसी की कुछ भलाई कर सकूँ तो बहुत अच्छा हो। इस से अवश्य मेरे चित्त को शांति पहुँच जाएगी।'

यह विचार पैदा होते ही धर्मदत्त ने अपने दोनों बेटों को बुलाया और व्यापार का सारा भार उन्हें सौंप दिया। कुछ ऐसे भेद भी थे, जो आज तक उसके अलावा कोई न जानते थे। वे सब भेद उसने उन्हें बता दिए। अंत में उसने कहा—'बच्चो!

रामसुख पांडे

मैं कल सबेरे उठ कर परदेश जाने वाला हूँ। बहुत दिन तक लौट कर नहीं आऊँगा।'

यह खबर सुन कर उसके लड़कों ने कुछ शोक प्रगट किया। लेकिन मन में खुशी भी हुई कि सारा व्यापार हाथ में आ गया।

दूसरे दिन धर्मदत्त बड़े तड़के उठ कर परदेश जाने की तैयारी करने लगा। उसने दोनों लड़कों को बुला कर, जो कुछ कहना था, कह दिया और विदा ली। उसके हाथ में सिर्फ एक छोटी सी थैली थी। दोनों लड़कों ने वह थैली तो देखी; लेकिन उसके अन्दर क्या है, यह उन्हें मालूम न हुआ। मालूम होता तो बेचारे ताज्जुब में पड़ जाते।

धर्मदत्त ने कह तो दिया कि परदेश जा रहा हूँ; लेकिन वह नगर छोड़ कर कहीं नहीं गया। साँझ तक इधर-उधर भटक कर उसने समय टाला। अँधेरा होते ही नगर के बाहर गरीबों के मुहल्ले में गया और एक जगह कपड़े बदल डाले। उसने अपने कपड़े उतार कर चीथड़े पहन लिए जिससे कोई पहचान न सके।

जाड़े के दिन थे; इसलिए सब जगह लोग किवाड़ बन्द कर आराम से सोने लग गए थे। सड़कें सूनी पड़ी थीं; हाँ, जगह जगह कुत्तों के भूँकने की आवाज़ सुनाई दे रही थी।

धर्मदत्त बड़ी दूर चल कर, एक झोंपड़ी के पास आकर ठहर गया और बोला—'भैया! मैं परदेशी हूँ, बूढ़ा हूँ। चलते-चलते बहुत थक गया हूँ। क्या आज रात आराम करने को जगह मिलेगी!' 'कौन हो भैया तुम, अन्दर आ जाओ न!' अन्दर से एक औरत ने जवाब दिया। धर्मदत्त झट टट्टी ढकेल कर अन्दर घुस गया।

धर्मदत्त को अच्छी तरह मालूम था कि उस झोंपड़ी में कौन रहता है। उस में एक बेवा औरत और उसके तीन बच्चे रहते थे। यह

उस परिवार को देख कर धर्मदत्त को बहुत खुशी हुई। उन सब के मुखड़ों पर गरीबी की निशानियाँ तो थीं; मगर किसी तरह के असंतोष या पीड़ा के लक्षण नहीं थे। वे सुखी थे। बेचारे धर्मदत्त की देहली पर लक्ष्मी नाचा करती थी। फिर भी वहाँ सुख-शान्ति का नाम तक नहीं था।

उस रात धर्मदत्त खा-पी कर वहीं सो रहा। तरह तरह के व्यंजन-ज्योनार तो नहीं थे। लेकिन जो कुछ खाने को मिला, उसी से आला तृप्त हो गई। धर्मदत्त को भोजन कभी उतना स्वादिष्ट नहीं लगा था। दूसरे दिन सवेरे उठ कर उसने बेवा से कहा—'मैया! मुझे शहर में कुछ काम है। जाता हूँ। आप को ज्यादा कष्ट न दूँगा।'

लेकिन उस औरत ने कहा—'भैया! बाहर चाहे जहाँ घूमो-फिरो; खाने के लिए यहीं आ जाना।' धर्मदत्त ने मन ही मन खुश होकर कहा—'अच्छा!'

यों दस दिन बीत गए। धर्मदत्त ने उस घर में जी भर कर आतिथ्य पाया। एक दिन उसने कहा—'मैया! आप कितनी अच्छी हैं! जान न पहचान; मुझे अपना मेहमान बना लिया।'

दिवङ्गत सोमगुप्त का परिवार था। इस सोमगुप्त ने किसी समय व्यापार में धर्मदत्त से होड़ की थी। लेकिन उस होड़ में इसकी हार हुई। बेचारे का दिवाला पिट गया। उसकी सारी जायदाद काफूर हो गई। आखिर इसी चिन्ता से घुल-घुल कर वह मर गया। उसकी पत्नी अपने बच्चों के साथ नगर के बाहर गरीबों के मुहल्ले में, एक झोंपड़ी में जाकर रहने और बड़ी मुश्किल से अपने दिन काटने लगी।

झोंपड़ी के अन्दर कदम रखते ही धर्मदत्त का मन विकल हो गया। उसने सोचा—'इस परिवार की दुर्दशा का कारण मैं ही हूँ।' लेकिन भाग्यवश उसे किसी ने नहीं पहचाना।

'भैया! तो क्या घर आए पाहुन को लौटा दूँ! हम गरीब तो हैं, मगर कंजूस नहीं हैं।' उस औरत ने जवाब दिया।

'और मैं हूँ कि आ गया, और बस, आसन जमा लिया। दस दिन से टलने का नाम नहीं लेता।' धर्मदत्त ने हँस कर कहा। 'तो क्या हुआ भैया! तुम्हारे लिए हम कोई खास चीज़ें तो बनाते नहीं? जो कुछ बनता है खा लेते हो और पड़ रहते हो। उमर ढल गयी तुम्हारी भी! इस परदेश में कहाँ कहाँ भटकते फिरोगे?' उस औरत ने कहा।

अब धर्मदत्त से सच्ची बात बताए बिना न रहा गया। उसने कहा—'भैया! मैं परदेशी नहीं हूँ। मैं इसी नगर का रहने वाला हूँ। मेरा नाम धर्मदत्त है। पहचाना मुझे?'

'भैया! धर्मदत्त के बारे में सुना तो था। मगर कभी देखा नहीं था। क्या वह धर्मदत्त करोड़-पति नहीं है? इन चीथड़ों में तुम कहोगे—'मैं धर्मदत्त हूँ' तो कौन विश्वास करेगा?' उस औरत ने कहा।

तब धर्मदत्त ने सारी कहानी कह सुनाई। सोमगुप्त और उसके बीच किस तरह होड़ शुरू हुई, इस होड़ के कारण किस तरह सोमगुप्त का दिवाला निकल गया, यह सब उसने सिलसिले से सुनाया। अंत में कहा—'आज मेरी भी हालत कुछ अच्छी नहीं है। बेटों ने मुझे घर से निकाल दिया है। इस बुढ़ापे में क्या कर सकता हूँ? इधर-उधर भटक रहा हूँ।'

उस औरत ने उसे कुछ नहीं कहा। आखिर एक लम्बी साँस लेकर बोली—'भैया! जो हो गया सो हो गया! इस हालत में अब तुम कहाँ जाओगे? यहीं रह जाओ! तुम्हें किसी चीज की कमी न होगी!' धर्मदत्त ने कहा—'अच्छा! लेकिन आज शाम को जरा सहर हो आऊँगा।' उस शाम को धर्मदत्त साथ लाई हुई थैली

लेकर घर लौट गया। पिता को देख कर राजदत्त और धनदत्त ने कहा—'पिताजी! भले आए! रोज आप ही की चर्चा चली करती थी! इतनी जल्दी कैसे लौट आए आप?' 'एक जरूरी काम है। इसलिए जल्दी चला आया। मुझे अभी पच्चीस हजार अशर्फियाँ चाहिए।' धर्मदत्त ने कहा।

'हाय! हाय! क्या किया जाय? घर में तो फूटी कौड़ी नहीं है!' बड़े ने कहा।

'इतनी बड़ी रकम लेकर क्या कीजिएगा?' छोटे ने पूछा।

'मैं यह रकम लेकर एक गरीब परिवार की सहायता करना चाहता हूँ।' धर्मदत्त ने कहा और सोमगुप्त और उसके परिवार की सारी राम-कहानी कह सुनाई।

पिता की बातें सुन कर लड़के आग-बबूला हो गए। 'पसीने की कमाई ले जाकर ऐरे-गैरों को बाँट देना चाहते हो? संसार में ऐसा भी होता है कहीं?' वे बोले। उनका चिल्लाना सुन कर घर के नौकर-चाकर सभी वहाँ जमा हो गए।

धर्मदत्त ने कहा—'भाई! गुस्सा न करो। मैंने तुम दोनों को करोड़ों कमा कर दिए! पाला-पोसा और बड़ा किया। लेकिन आज तुम पच्चीस हजार अशर्फियाँ देने से इनकार कर रहे हो, जो तुम्हारे लिए कुछ भी नहीं है। मैं तुम लोगों का स्वभाव अच्छी तरह समझ गया। उतना बेवकूफ नहीं हूँ। लो, यह देखो!' कह कर उसने अपने हाथ की थैली खोल कर दिखा दी। उस थैली में लाखों की कीमत वाले बहुत से हीरे-जवाहरात थे। बेटे यह देख कर भौंचक रह गए। धर्मदत्त थैली लेकर उदास मन से, सिर झुकाए घर से निकला।

साँझ को जब धर्मदत्त लौट आया तो सोमगुप्त की बेवा पत्नी और बच्चों ने प्रेम-पूर्वक उसका स्वागत किया। धर्मदत्त के घर पर जो बीती, उसका उन्हें पता न था।

किसी समय रणवीरसिंह नाम का राजा रहता था। उसके पिता बड़े प्रतापी थे। उनके जमाने में राज्य की सीमा दूर दूर तक फैली हुई थी। उनका नाम सुनते ही दुश्मन कांप उठते थे। उन्होंने अपने कौशल से राज्य का काम-काज इतना अच्छा चलाया था कि उनका यश चारों ओर छा गया। लेकिन रणवीरसिंह बड़ा कपूत निकला। भोग-विलास में पड़ कर वह राज-काज सब भूल गया। उसके अत्याचारों से प्रजा भी तंग आ गई। मौका पाकर सामन्त लोग स्वतन्त्र बन बैठे और दुश्मन लोग एक एक कर उसके राज्य के बहुत से हिस्से दबोच बैठे। यहाँ तक कि उसका राज्य बहुत छोटा बन गया। ऐसी हालत में रणवीरसिंह की मृत्यु हो गई और युवराज बलवीरसिंह गद्दी पर बैठा।

बलवीर अपने दादा की तरह ही बड़ा वीर और उद्यमी पुरुष था। गद्दी पर बैठते ही उसने राज्य की दशा सुधारना शुरू कर दिया। चापलूस दरबारियों को गर्दनिया देकर निकाल दिया गया। बुद्धिमानों की उस दरबार में फिर से खातिर होने लगी। इन्साफ दूध का दूध और पानी का पानी होने लगा। यहाँ तक कि व्याकुल प्रजा के मन में नई आशा जाग उठी।

इस तरह राज्य में सुव्यवस्था स्थापित करके बलवीर ने दुश्मनों की तरफ निगाह फेरी। जो जो पड़ोसी राजा उसके राज के हिस्से दबोच बैठे थे, उन सब को उसने एक सबक सिखाने का इरादा कर लिया। राज्य में युद्ध की तैयारियाँ होने लगीं। सब लोग बड़े जोश के साथ भाग लेने लगे। लाखों आदमी सेना में भर्ती होने के लिए आगे बढ़े। शक्तिशाली सेना तैयार हो गई। उत्साही वीर युवक अपने नौजवान राजा के नेतृत्व में मातृ-देश का गौरव बढ़ा कर, शत्रु-देशों में

अपने विजय की पताका फहराने निकले। मारू-बाजे की आवाज सुनाई देने लगी।

बल्वीर का विजय-रथ दो साल तक बेरोक-टोक आगे बढ़ता रहा। कई राजाओं ने उसकी विशाल सेना को देखते ही सिर झुका लिया। कुछ देशों की प्रजा ने उसकी उदारता और वीरता से प्रभावित होकर, बाँह खोल कर उसका स्वागत किया। और कुछ हठी राजाओं ने लोहे का स्वाद चखने के बाद ही लोहा माना। इस तरह जहाँ जहाँ गया, उसी की जीत होती गई। यों क्रमशः एक एक प्रदेश जीत कर, लड़ाई में हारे हुए राजाओं से सुलह करते, और पुराने दुश्मनों को नीचा दिखा कर, अंत में उन्हें क्षमा करते, बल्वीर महा-दुर्ग नाम के किले के पास जा पहुँचा।

महा-दुर्ग, जैसा कि नाम से ही ज्ञात हो जाता है, एक बड़ा मज़बूत किला था। उसके चारों ओर तीन तीन ऊँची चहरदीवारियाँ थीं। किले में एक लाख से ज्यादा सैनिकों के रहने की व्यवस्था थी। महा-दुर्ग के राजा लोग ऐसे नहीं थे, जो बात बात पर दूसरों से झगड़ा मोल लेते। हाँ, समय आने पर अत्याचारी आक्रमणकारियों को पाठ पढ़ाने में वे कभी नहीं हिचकिचाते थे। ऐसे वंश में जन्म लेकर भी, बल्वीर के पिता रणवीरसिंह के सम-कालीन महा-दुर्ग के राजा ने उसकी कमजोरी से फायदा उठा कर, राज्य का कुछ हिस्सा हड़प लिया था। उस हिस्से को फिर से जीतने के लिए ही बल्वीर ने महा-दुर्ग पर चढ़ाई कर दी।

महा-दुर्ग सचमुच एक दुर्गम दुर्ग था। उस पर घेरा डाल कर बैठे रहने के सिवा और कुछ नहीं किया जा सकता था। किले के फाटक तोड़ कर अंदर घुसने की चेष्टा बड़ी भारी मूर्खता होती। यह बात बल्वीर के सेनापति

ने उसे अच्छी तरह समझा दी थी। इसलिए बलवीर ने चुपके से घेरा डाल दिया और दूत के द्वारा संदेश भेज दिया कि 'जब तक महा-दुर्ग के निवासी हार नहीं मान लेते, तब तक घेरा नहीं उठाया जायगा।'

बलवीर के दूत को अंदर जाने से किसी ने नहीं रोका। शीघ्र ही वह राज-महल के पास पहुँच गया। द्वारपालों ने उसे ले जाकर एक सुन्दरी युवती के सामने खड़ा कर दिया। वह सुन्दरी राजोचित वस्त्र पहने, गद्दी पर बैठी हुई थी। उसका मुखड़ा पूनों के चाँद की तरह प्रकाशित हो रहा था। 'तुम कौन हो? क्या चाहते हो?' उस युवती ने पूछा।

'देवी! माफ़ करो! मैं अपना संदेश दुर्ग के स्वामी के सिवा और किसी से नहीं कह सकता।' दूत ने जवाब दिया।

'मैं ही इस देश की स्वामिनी हूँ। पिताजी बीमार हैं। सारा राज-काज मैं ही चलाती हूँ।' उस युवती ने कहा और अपने मुकुट की ओर इशारा किया।

'देवी! हमारे स्वामी बलवीरसिंहजी का यह संदेश है—'हम ने आप के किले को घेर लिया है। जब तक आप हमारी शर्तों पर सुलह करने को राजी नहीं होते, तब तक लड़ाई चलती रहेगी। इस लड़ाई में हमारी जो हानि होगी, उसकी जिम्मेवारी आपकी होगी।' दूत ने संदेश कह दिया।
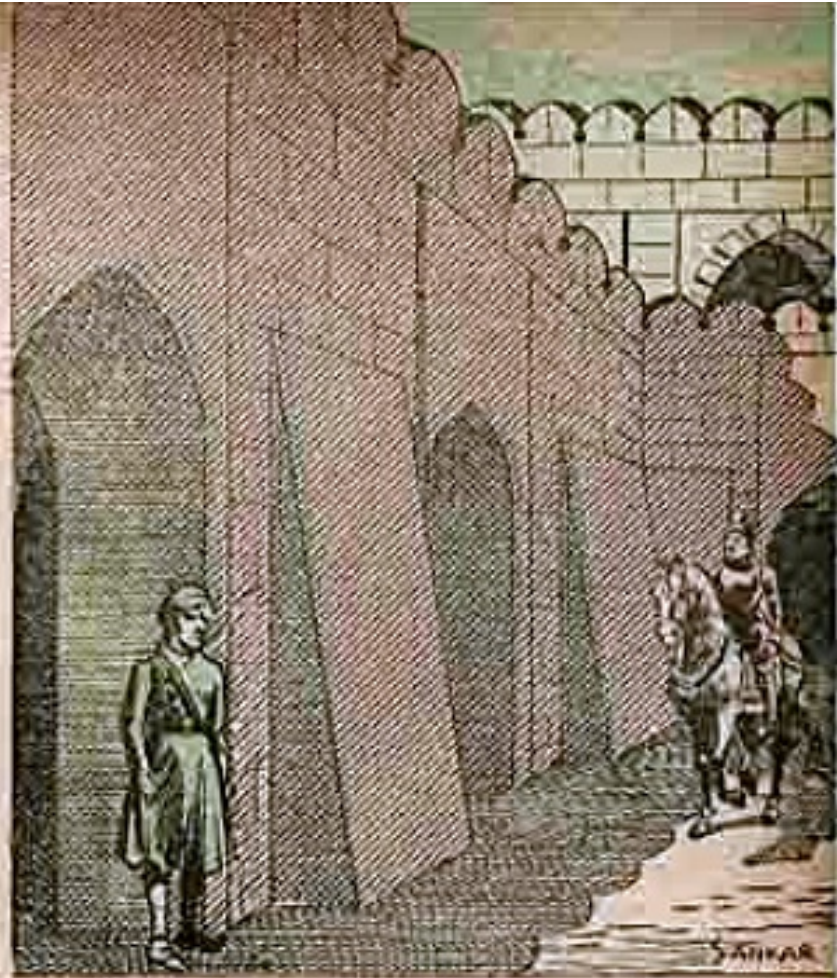
तब महा-दुर्ग की रानी ने थोड़ी देर तक सोच कर कहा—'महा-दुर्ग की रानी रूपमती ने तुम्हारे स्वामी का संदेश सुन लिया। उनसे कहना—'रनवास पर घेरा डालोगे, तभी किले पर कब्जा होगा।'

यह विचित्र संदेश दूत की समझ में न आया। महा-दुर्ग की रानी ने दूत को किले में घूमने-फिरने की इजाज़त दे दी। दूत ने किले में चारों ओर घूम कर हाल-चाल

जान लिया। सर्वत्र शान्ति विराज रही थी। कहीं युद्ध की सरगरमी दिखाई न पड़ती थी। लोग अपने कामों में लगे हुए थे। सब कुछ देख लेने के बाद दूत लौट गया और अपने स्वामी के पास जाकर रूपमती का संदेश सुना दिया।

यह संदेश बलवीर की भी समझ में न आया। रनवास पर घेरा डालने से किले पर कब्जा कैसे हो जाएगा? यह तो बेसिर-पैर की बात थी। नादान लड़की लड़ाई के बारे में क्या जाने! सुन्दरी युवती और नई रानी से और आशा ही क्या की जा सकती है!

नादान नहीं तो और क्या! लड़ाई के समय भी कोई शत्रु-दूत को किला देखने देता है!

अंत में बलवीर ने सोचा—'जिस किले पर हमला करके आसानी से कब्जा किया जा सकता है, उस पर घेरा डाल कर बैठे रहने की क्या जरूरत है! इस नादान छोकरी से महा-दुर्ग छीन लेना तो बच्चों का खेल है! भला ऐसी अंधी हुकूमत कितने दिन टिक सकती है!'

जब यह खबर बलवीरसिंह की सेना में फैल गई कि किले में युद्ध की तैयारियाँ कहीं नज़र नहीं आतीं, तो उनका उत्साह दुगुना हो गया। किले पर हमला करने के ख्याल से सेना को दो हिस्सों में बाँट दिया गया। कुछ जत्थों ने दीवारों पर चढ़ना शुरू किया; कुछ फाटक तोड़ने चले।

दोनों का काम निर्विघ्न चलने लगा। किले के फाटक पहले ही धक्के में खुल गए। सैनिकों के अंदर घुसते ही वे अपने आप बन्द हो गए। दीवारों पर चढ़ने वाले सिपाहियों को भी किसी ने नहीं रोका। लेकिन सब से अजीब बात यह थी कि इन दोनों दलों के सिपाहियों में से एक भी लौट न पाया। उन लोगों का क्या हाल हुआ,

यह किसी को पता न चला। दो दिन बाद और एक हमला किया गया। उसका भी यही परिणाम हुआ। जो उस किले में जाता था, लौट कर नहीं आता था।

तब बलवीर ने रूपमती के पास और एक दूत भेजा। उसने कहला भेजा कि 'एक हफ्ते के अंदर अगर किले के रहने वाले घुटने नहीं टेक देंगे तो वह सारी सेना के साथ हमला करेगा और भीषण युद्ध करके सारा किला नेस्तनाबूद करके छोड़ेगा।' उत्तर मिला—'रनवास पर कब्जा किए बिना किले पर कब्जा नहीं होगा।'

यह सुन कर बलवीर को बहुत गुस्सा आ गया। उसने सोचा—'वह उतनी नादान नहीं है! वह तो मेरा मजाक उड़ा रही है! ऐसी मजाल इसकी? लेकिन इस किले के रहने वाले इतने दिन से कैसे जी रहे हैं? कैसे पेट भर रहे हैं? क्योंकि बाहर से तो कुछ भी अंदर नहीं जाता। मेरे सिपाही आस-पास के गाँवों पर छापे मार मार कर लूट-मार कर रहे हैं। फिर भी उनको भर पेट खाने को नहीं मिलता! हमेशा सोचते हैं—कब घेरा खतम हो और कब घर लौट चलें? ऐसी हालत में किले के रहने वाले न जाने, कैसी दुर्दशा में होंगे! क्या रूपमती यह सब नहीं जानती? वह चुपचाप सुलह क्यों नहीं कर लेती? इस बेसर-पैर के संदेश का क्या मतलब?'

कुछ भी हो, बलवीर ने अंत तक घेरा जारी रखने का निश्चय कर लिया। उसने सोचा—'घेरा तो तभी उठेगा जब वह स्वयं आकर मेरे पैरों पर माथा नवा देगी।' उसे पूरा विश्वास था कि ऐसा होने में ज्यादा दिन नहीं लगेंगे। यही नहीं; उसने किले के फाटक के सामने ही अपना तम्बू तनवा दिया। वह अब हमेशा फाटक की ओर
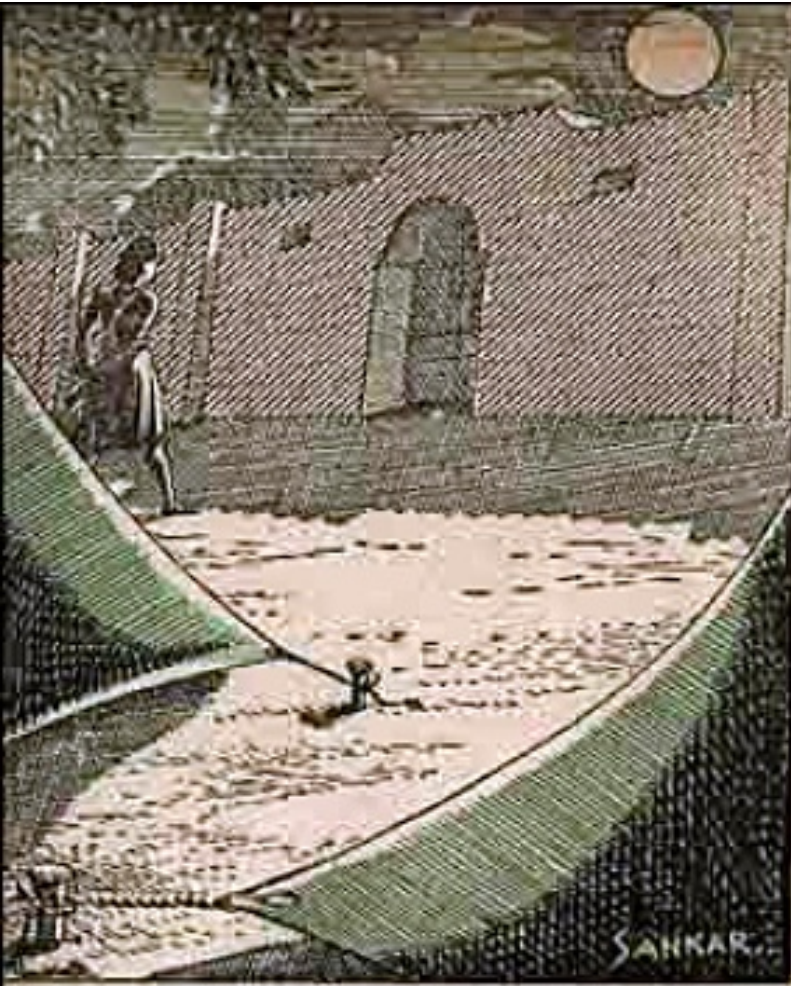
देखता रहता कि न जाने, कब फाटक खुलें, और कब रूपमती उससे सुलह की भीख माँगने आए !

सच्ची बात तो यह थी कि जिस दिन दूत ने रूपमती की सुन्दरता का बखान कर सुनाया था, उस दिन से बल्वीर के हृदय में उसे देखने की प्रबल आकांक्षा पैदा हो गई थी।

लेकिन उसकी आशा पूरी नहीं हुई। महीनों बीत गए। न जाने, कितनी बार आसमान में चांद घुल-घुल कर, अपना सारा तेज खोकर, ओझल हो गया और फिर प्रकाश और सुन्दरता पाकर क्रमशः बढ़ते हुए पूर्ण हो गया ! न जाने, कितनी बार बल्वीर के हृदय में कामना की मधुर तरंगें उठीं और निराशा के तीर से टकरा कर, चूर-चूर होकर विलीन हो गईं !

धीरे-धीरे बल्वीर की सेना की बड़ी दुर्दशा हो गयी। किले के बाहर कोसों तक कहीं खेती-बारी का नामो-निशान न था। ऐसा मालूम होता था, जैसे महा-दुर्ग पर घेरा डाल कर बैठे हुए बल्वीर के सैनिकों पर दुर्भिक्ष ने घेरा डाल दिया हो ! सिपाही भूख से बेहाल थे। वे अपने घोड़ों को मार कर खाने लग गए थे। बल्वीर को मालूम हो गया था कि घेरा अब ज्यादा दिन नहीं चल सकता। उसके मन में इस युद्ध के प्रति भयङ्कर घृणा पैदा हो गई थी। सिपाही भी पहले का सारा जोश खो चुके थे और अब हमेशा घर लौटने की चर्चा करते रहते थे। बल्वीर ने सोचा—'अब घेरा हटा देने के सिवा कोई चारा नहीं।' लेकिन ऐसा करने के लिए मन राजी नहीं होता था।

उस रात सब जगह पूनों की चाँदनी छिटकी हुई थी। आधी रात हो गई थी। मगर बल्वीर की आँखों में नींद का नाम नहीं था। वह खीमे के बाहर खड़ा खड़ा

रूपमती के बारे में सोच रहा था। वह नादान छोकरी है, यह ख्याल तो उसके मन से कभी का हट गया था। अब उसके प्रति मन में एक प्रशंसा का भाव उदित हो चला था। उसे एक बार देख लेने की इच्छा और भी तीव्र हो गई थी। बस, उसने अनजाने ही जाकर किले का फाटक खटखटाया। एक झरोखा खुला और रखवाले ने झाँक कर पूछा—'कौन हो तुम?' 'मैं महाराज बल्वीरसिंह का दूत हूँ!' बल्वीर ने जवाब दिया।

'अच्छा! ठहरिए!' कह कर रखवाले ने आकर फाटक खोले और उसको अंदर दाखिल कर लिया। दूसरे ही क्षण बल्वीर रूपमती के राज-महल में था और उसकी सब तरह से खातिर हो रही थी। उस रात उसे नींद नहीं आई। किसी तरह पल पल गिन कर रात काटी। बड़े तड़के उठा और जाकर किले में घूमने लगा। उसे किसी ने रोका नहीं। जहाँ गया वहीं भूख से अधमरे, काँटों से सूखे हुए आदमी दिखाई दिए। उनके चेहरे देख कर डर लगता था। एक बूढ़े ने उसको देख कर कहा—'आप परदेशी मालूम होते हैं। लेकिन आज हम ऐसी दशा में हैं कि आपकी कुछ भी खातिर नहीं कर सकते। साग-सत्तू भी मयस्सर नहीं होता। मेहमानों की खातिर क्या करेंगे!'

उसकी बातें सुन कर बल्वीर की आँखों में आँसू आ गए। वह सीधे राज-महल को लौट आया। उसी समय उसे सूचना मिली कि महारानी उसे दर्शन देने को तैयार हैं। सिपाही लोग उसे रूपमती के सामने ले गए। रानी रूपमती ने उसे देखते ही पहचान लिया। स्वागत-सत्कार करने के बाद उसने पूछा—'दूत बन कर आप ही क्यों आए? कोई दूत ही नहीं मिला क्या?'

बल्वीर क्षण भर स्तब्ध रह गया। उसके दूत ने रूपमती की सुन्दरता का बखान कुछ भी बढ़ा चढ़ा कर नहीं किया था। हाँ, वह भी अपनी प्रजा की ही तरह सूख कर काँटा बनी हुई थी।

'मुझे तुम्हारा हठ देख कर बहुत खेद हो रहा है। तुम्हारी प्रजा भूखों मर रही है। फिर भी तुम सिर झुकाना नहीं चाहती! तुम सुलह क्यों नहीं कर लेतीं!' बल्वीर ने उससे पूछा।

'हमें मालूम नहीं कि आप क्यों इस किले पर घेरा डाले बैठे हैं। मेरे पिता ने आपके पिता के राज्य का जो हिस्सा हड़प लिया वह तो उजड़ कर कभी का वीरान हो गया। याद रखिए, महा-दुर्ग कभी आपके सामने सर नहीं झुकाएगा। हम सब लोग भूख से तड़प-तड़प कर जान दे देंगे; मगर आपको किले में प्रवेश नहीं मिलेगा। किला जीतने के लिए आपको पहले रनवास पर घेरा डालना होगा।' रूपमती ने कहा।

तब जाकर बल्वीर की समझ में आ गया कि उसके कहने का मतलब क्या है!

वह अपने आसन से उठा और रूपमती के सामने घुटने टेक कर बोला—'रूपा! माफ करो मुझे! मेरे जैसा बेवकूफ और कहीं नहीं मिलेगा। कृपा करके मुझ से ब्याह कर लो और कृतार्थ बना दो! इस दुनियाँ में तुम से बढ़ कर मेरा कोई अपना नहीं है।'

रूपमती ने उसको हाथ पकड़ कर उठाया और अपने सिंहासन पर बिठा लिया। मन्त्री और दरबारियों को खबर भेजी गई। बल्वीर ने रनवास पर घेरा डाल दिया।

थोड़ी देर बाद किले के फाटक खुले और बल्वीर के सैनिक बाराती बन कर अंदर आ गए। महा-दुर्ग में नई शोभा दीखने लगी। धूम-धाम के साथ बल्वीर का रानी रूपमती से विवाह हो गया। महा-दुर्ग ने अंत में सर झुका लिया।

संसार का सब से बड़ा फूल

बच्चो! तुम ने तरह तरह के फूल देखे होंगे। रंग-बिरंगे फूलों ने अपने रूप से तुम्हारी आँखों को ठण्डक पहुँचाई होगी और अपनी गन्ध से तुम्हारे चित्त को प्रसन्न किया होगा। लेकिन अभी हम जिस फूल की चर्चा कर रहे हैं, वैसा आश्चर्य-जनक फूल तुम ने कभी नहीं देखा होगा। यह संसार का सब से बड़ा फूल है; इसी से तुम कल्पना कर सकते हो कि यह कैसा विचित्र फूल है! यह फूल एक गज चौड़ा होता है। फूल के बीचों-बीच एक बड़ा दोना सा बना रहता है। यह दोना इतना बड़ा है कि डेढ़ गैलन पानी इस में आसानी से समा जाता है। फूल तो होता है पीला, मगर जगह जगह सफेद और नीले धब्बे शोभा देते हैं। इस फूल की कलियाँ गोभी जितनी बड़ी होती हैं। इस में पाँच पँखुड़ियाँ होती हैं और एक

एक पँखुड़ी आदमी की हथेली जितनी मोटी होती है। सब से अजीब बात यह है कि यह फूल किसी पौधे पर नहीं लगता और इस में पत्ते भी नहीं होते। जङ्गलों में जो लम्बे-लम्बे पुराने पेड़ होते हैं, उनकी जड़ों पर इस का जन्म होता है। याने इस फूल का मूल उस जड़ में होता है। इसे तोड़ लेना भी उतना आसान नहीं। क्योंकि इसका वजन पन्द्रह पौंड होता है।

यह फूल सुमात्रा द्वीप के उष्ण-वातावरण वाले जङ्गलों में पाया जाता है।

इस अजीब फूल को सन् १८१८ में सर स्टॉफर्ड राफेल्स नामक व्यक्ति ने खोज निकाला। इसलिए इस का नाम ही 'राफेलिसया' पड़ गया। बच्चो! कभी ऐसे फूल के बारे में कल्पना भी की है तुमने!

कहते हैं कि किसी गाँव में एक धोबी रहता था। उस धोबी के पास एक गधा था। एक दिन वह धोबी धुले हुए कपड़ों की दो गठरियाँ बाँध कर, उन्हें गधे की पीठ पर लाद कर, कुछ गुनगुनाते हुए गाँव की ओर लौट रहा था। अँधेरा हो चला था और वह एक पहाड़ की बगल से जा रहा था।

ऐसे समय उसे किसी के कराहने की आवाज़ सुनाई दी। जाकर देखा तो एक परदेशी हृदय के रोग से छटपटा रहा था। धोबी ने कहा—'भैया! उठ कर मेरे साथ चलो!'

तब उस आदमी ने कहा—'भई! मैं उठ नहीं सकता। मुझे उठा कर ले चलो!'

धोबी सोच में पड़ गया। इसे उठा कर कैसे ले जाए वह! फिर रात के वक्त उसे वहाँ छोड़ जाने का भी मन न होता था। इसलिए, गधे की पीठ पर से गठरियाँ उठा कर उसने अपनी पीठ पर रख लीं और उस परदेशी को गधे पर बिठा कर वहाँ से घर ले चला।

धोबी की जोरू का हृदय तो अच्छा था, मगर ज़बान तेज थी। जब उसने देखा कि उसका पति पाहुन को साथ ला रहा है तो बोली—'आधी रात गए यह बला कहाँ से लाए हो!' लेकिन धोबी ने धीरे से उसे सारी बात समझा दी। परदेशी के हृदय की पीड़ा क्रमशः बढ़ती गई। आधी रात के वक्त उसने धोबी को बुला कर कहा—'भैया! मैं अब कुछ ही पलों का मेहमान हूँ। मेरी गठरी में एक चन्दन की पेटी है। उसे तुम ले लो! उस में....' यों वह और भी कुछ कहना ही चाहता था कि उसके प्राण-पखेरू उड़ गए।

धोबिन ने जब उठ कर यह देखा तो चिल्लाई—'जो सोचा था वही हुआ। यह निगोड़ा सारी दुनियाँ घूम कर आया और हमारे यहाँ मर गया। हाय! हाय! अब

केशोराम अग्निहोत्री

लोग क्या कहेंगे? कहेंगे कि रुपयों के लालच से हमीं ने इसे मार डाला!'

धोबी का सर चकरा गया। उसने कहा—'अच्छा! तो इस लाश को गधे पर लाद कर ले जाता हूँ और मरघट में गाड़ आता हूँ!' यह कह कर वह लाश को गधे पर लाद कर मरघट की ओर ले चला।

बेचारे धोबी को पता नहीं था कि कोई उसका पीछा कर रहा है। पीछा करने वाला भी दूसरा कोई नहीं; एक नाई था जो धोबी के घर के सामने वाले घर में ही रहता था। मरघट जाकर धोबी ने लाश को एक जगह गाड़ दिया और घर लौट कर निश्चित मन से सो रहा। लेकिन नाई को, जिसने धोबी का पीछा करके सारा हाल देख लिया था, बिल्कुल नींद न आई। उस बेचारे का पेशा ही था दूसरों के मामलों में दखल देना।

आज उसे अच्छा मौका मिल गया था। तड़के जाकर उसने गाँव के मुखिया से धोबी की शिकायत कर दी। मुखिया ने तुरंत धोबी को बुलवाया और पूछा—'क्यों बे! तूने परदेशी से जो माल लूट लिया वह अभी उगलता है कि सरकार में दे दूँ खबर!'
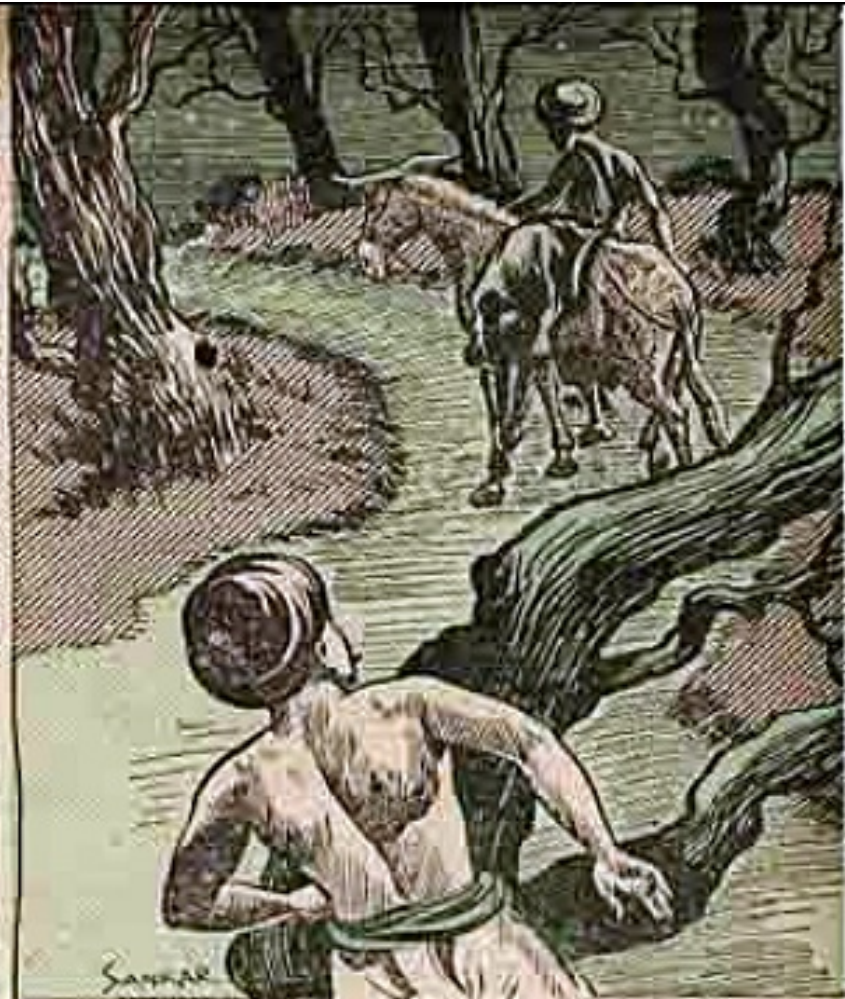
तब धोबी ने रो-धोकर कहा—'हुजूर! सच कहता हूँ—उस परदेशी की गठरी में कानी-कौड़ी भी नहीं थी। सिर्फ चन्दन की एक पेटी थी उसके पास!'

तुरंत मुखिया ने चन्दन की वह पेटी मँगवा कर देखी। उसमें एक पुराने ताड़ के पत्ते और एक पुराने दीपक के सिवा और कुछ नहीं था। उस ताड़ के पत्ते पर किसी अजीब लिपि में कुछ लिखा था। मगर वह मुखिया की समझ में न आया। तब मुखिया को बहुत गुस्सा आया और उसने नाई और धोबी, दोनों को गालियाँ देकर भगा दिया।

कहा—'जा! इसे ले जाकर चूल्हा सुलगा ले।' धोबिन ने पेटी का ढकना खोला तो ताड़ के पत्ते पर नज़र पड़ी। 'इसमें क्या लिखा है! किसी के पास जाकर पढ़वा क्यों नहीं लेते!' उसने कहा।

तब धोबी उस पत्ते को गाँव के पण्डितजी के पास ले गया। पण्डितजी ने पढ़ कर बताया—'अरे! यह तो एक मन्त्र है। अगर किसी जगह सोना-चांदी या रुपया-पैसा गड़ा हो और तुम उस जगह जाकर यह मन्त्र पढ़ो तो वह संपदा तुम्हारे वश में आ जाएगी। लेकिन क्या फायदा!' अंत में पण्डितजी का सारा जोश ठण्डा पड़ गया।

'क्यों पण्डितजी! क्या बात है!' धोबी ने पूछा। 'कुछ नहीं! यह मन्त्र पढ़ कर एक मन्त्र-दीप जलाना होगा। तभी काम बनेगा। वैसा दीप कहाँ मिलेगा!' पण्डितजी ने कहा।

पण्डितजी की यह बात सुन कर धोबी तुरंत दौड़ कर घर गया और चन्दन की पेटी खोल कर उस में रखा हुआ दीपक उठा लाया। उसने उसे पण्डितजी को दिखाया। पण्डितजी उसे देख कर उछल पड़े। 'अरे! तुझे कहाँ मिल गया यह! तू तो बड़ा उस्ताद मालूम होता है!' पण्डितजी ने कहा। तब

धोबी थोड़ी ही दूर गया था कि मुखिया ने उसे फिर बुलवाया और कहा—'अब की तुम्हें छोड़े देता हूँ। यह चन्दन की पेटी तुम्हीं ले जाओ। लेकिन तुम ने हमें नाहक हैरान किया। इसलिए जुर्माने के तौर पर अपने गधे को लाकर हमारी बाड़ी में बांध दो! यही तुम्हारी सज़ा है।'

धोबी उदास मन से घर लौटा। बेचारा नाहक अपने गधे से हाथ धो बैठा था। इस गुस्से में जब उसने धोबिन को कहते सुना कि घर में लकड़ियाँ नहीं हैं, तो उसने उसे वह चन्दन की पेटी दे दी और झुँझला कर

धोबी ने आदि से अंत तक परदेशी की सारी कहानी सुनाई। तब पण्डितजी ने और एक बार उस ताड़ के पत्ते को पढ़ा और धोबी से पूछा—'तो वह परदेशी तुझे किस जगह दिखाई दिया था!' धोबी ने पण्डितजी को उस पहाड़ और उस जगह का नाम बता दिया, जहाँ परदेशी से उसकी मुलाकात हुई थी।

उस रोज़ आधी रात को चुपके से उठ कर पण्डितजी धोबी के साथ चले और एक-दो घण्टे बाद उस पहाड़ के नजदीक पहुँचे। धोबी ने पण्डितजी को वह जगह दिखा दी, जहाँ उसे परदेशी कराहता दिखाई दिया था। पण्डितजी ने मन्त्र-दीप जलाया और धोबी को पकड़ने को दिया। फिर दोनों पहाड़ के पास गए। पण्डितजी ने मन्त्र-दीप की रोशनी में ताड़ के पत्ते पर लिखा हुआ मन्त्र पढ़ना शुरू किया।

आश्चर्य! मन्त्र पढ़ते ही धड़ाके की आवाज़ हुई और पहाड़ की चट्टान में एक दरवाज़ा खुल गया। चकित होकर पण्डितजी और धोबी दोनों अंदर घुसे। उन्हें नीचे उतरने के लिए सीढ़ियाँ दिखाई दीं। उस सुरंग में बहुत दूर जाने के बाद उन्हें दो बड़े ताम्बे के कलसे दिखाई दिए, जिन में अशर्फ़ियाँ और हीरे-जवाहर भरे पड़े थे। उन्हें देख कर धोबी की आँखें चौंधिया गईं। पण्डितजी ने कहा—'खबरदार! दीया न बुझने देना। नहीं तो अनर्थ हो जाएगा!' फिर उन्होंने धोबी का और अपना, दोनों दुपट्टे जमीन पर बिछा दिए और अशर्फ़ियों और हीरे-जवाहरों की दो गठरियाँ बाँध लीं। फिर गठरियाँ उठा कर दोनों बाहर चले और सही-सलामत बाहर पहुँच गए। पण्डितजी ने बाहर जाते ही दीप बुझा दिया। तुरन्त चट्टान का दरवाज़ा बन्द हो गया।

लिए क्या क्या लाया हूँ !' यह कह कर उसने गठरी खोली और एक मोहनमाला धोबिन की ओर फेंक दी। धोबिन आँखें फाड़ फाड़ कर उसकी ओर देखने लगी और धोबी को दिक करने लगी कि 'बताओ! तुम्हें यह सब कहाँ मिल गया ?'

तब धोबी ने सारा किस्सा कह दिया और हिदायत कर दी कि किसी से कहना नहीं।

धोबिन ने पति के आज्ञानुसार यह भेद किसी को नहीं बताया ; सिर्फ एक नाई की जोरू के सिवा।

और क्या था ! नाई की जोरू ने यह बात अपने पति से कह दी। उसने जाकर मुखिया के कान में फूँक दिया। मुखिया ने तुरंत दो चपरासियों के साथ आकर धोबी के घर की तलाशी ली। माल आसानी से मिल गया। धोबी ने छिपा कर भी नहीं रखा था उसे।

लौटते वक्त पण्डितजी ने धोबी से कहा— 'भई! भेद किसी को मालूम न होने देना। अपनी बीबी से भी जिक्र न करना! वरना जान न बचेगी!' गाँव में पहुँच कर दोनों अपनी अपनी गठरी लेकर घर चले गए।

धोबी जब घर पहुँचा तो देखा कि घरवाली जाग रही है। वह कहने लगी— 'आधी रात तक कहाँ कहाँ मारे फिरते हो ! घर आने को फुरसत नहीं मिलती !'

तब धोबी ने काँपते हुए कहा—'चुप रहो! चिल्लाओ नहीं! लो, देखो! तुम्हारे

'तू ने सचमुच उस परदेशी को मार डाला था! नहीं तो यह सब माल कहाँ से आया !' मुखिया ने गरज कर पूछा।

'मालिक! कृपा करो! मैं बिलकुल बेकसूर हूँ। यकीन न हो तो पण्डितजी से पूछ लीजिए। वे ही सारा किस्सा सुना देंगे।'

धोबी ने थर–थर काँपते हुए कहा। मुखिया ने तुरंत पण्डितजी को पकड़ लाने का हुक्म दिया!

लेकिन पण्डितजी ठहरे चालाक। उन्होंने धीरे से कहा—'भैया' हल्ला क्यों मचाते हो! आज रात तुम भी चलो हमारे साथ! खुद ही आकर देख लेना कि वहाँ कितना धन है!'

मुखिया मान गया। उस रात ये सभी उस पहाड़ की ओर चले। मुखिया ने नाई को भी साथ ले लिया था। पहाड़ के पास पहुँच कर पण्डितजी ने मन्त्र-दीप जलाया और मन्त्र पढ़ा। तुरंत द्वार खुल गए।

'तुम दोनों अंदर जाकर पहले दो गठरियाँ बाँध लाओ! पीछे हम लोग आएँगे।' मुखिया ने पण्डितजी और धोबी से कहा। तुरंत ये दोनों अंदर गए। इस बीच बाहर नाई ने मुखिया से कहा—'मालिक! दोनों के लौटते ही वह दीपक छीन लेना चाहिए हमें।'

'मैं भी यही सोच रहा था। अच्छा! पहले बाहर आने तो दो।' मुखिया ने कहा।

इतने में पण्डितजी और धोबी गठरियाँ लेकर बाहर आए। 'ले लो अपना हिस्सा!' कह कर उन्होंने गठरियाँ खोलीं। दोनों लालचियों की आँखें चौंधिया गईं। 'और नहीं क्या वहाँ!' दोनों ने एक साथ पूछा। 'है क्यों नहीं! उन तांबे के कलसों में न जाने, कितना धन भरा पड़ा है!' पण्डितजी बोले।

'तब सिर्फ दो ही गठरियाँ लेकर क्यों लौट आये! ठहरो, जरा हम भी एक बार अंदर हो आएँ!' मुखिया ने कहा और नाई के साथ अंदर जाने लगा।

वे दोनों अंदर घुसे ही थे कि वायु का एक प्रबल झोंका आया और पण्डितजी के हाथ का मन्त्र-दीप बुझ गया। तुरंत चट्टान का दरवाजा बन्द हो गया और दोनों दुष्ट सुरंग में बन्दी बन गए। पण्डितजी ने धोबी से कहा—'देखा तुमने! दुष्टों को भगवान ही दण्ड दे देता है। चलो, लौट चलें!' दोनों निश्चिंत घर लौट गए।

हम लोग अँधेरे में क्यों नहीं देख पाते ?

उजाला नहीं होने को ही 'अँधेरा' कहते हैं, जैसे किसी प्रकार के शब्द नहीं होने को 'सन्नाटा'। जब हमें प्रकाश नहीं दीखता तो हम कहते हैं—'अँधेरा है।' लेकिन ऐसा भी होता है कि शून्य में प्रकाश की तरंगें आती हैं और कोई उन्हें नहीं देख पाते। इस से साबित होता है कि देखने के लिए दो चीज़ों की ज़रूरत होती है। एक तो हमारे बाहर प्रकाश हो। और दूसरे उस प्रकाश का अनुभव करने की शक्ति हम में हो। इसीलिए हम अँधेरे में नहीं देख सकते। क्योंकि अँधेरे में रोशनी नहीं होती और रोशनी को ही हम देखते हैं। हाँ, देखने के लिए आँख भी होनी चाहिए। अँधेरे कमरे में मेज पड़ी होती है, लेकिन हम उसे देख नहीं पाते, इसी से कि वहाँ रोशनी नहीं है। जब हम कहते हैं कि 'हम मेज को देखते हैं' तो मतलब है—मेज से आने वाली रोशनी को देखते हैं। इतना ही नहीं, अन्धा आदमी दिन की रोशनी में भी नहीं देख सकता। उसके लिए रोशनी भी अँधेरा है। इससे साबित होता है कि अँधेरा दो तरह से हो सकता है—एक तो रोशनी के न होने से, दूसरे रोशनी को देखने की शक्ति के न होने से।

फिर बिल्ली, बाघ आदि जानवर अँधेरे में कैसे देख पाते हैं? इसका जवाब जानने के पहले हमें यह समझ लेना चाहिए कि संपूर्ण अंधकार में, जब कि किसी ओर से प्रकाश की एक भी किरण नहीं आने पाती, कोई नहीं देख सकता। लेकिन ऐसा बहुत कम होता है। जब हम कहते हैं—'अँधेरा है' तो माने होता है—'प्रकाश इतना कम है कि हम नहीं देख पाते।' हमारी आँखें ऐसी बनी होती हैं कि धीमी रोशनी के लिए वे अपने को तैयार नहीं कर पातीं। लेकिन कुछ जानवर अपनी आँख के तारों को इतना बड़ा बना सकते हैं कि रोशनी की जो भी किरणें मिलती हैं, उन्हीं से काम चला लेते हैं। अँधेरे में बिल्ली की आँख देखने से पता चलेगा कि आँख का तारा बहुत बड़ा हो गया है। इसी से उस जगह जो भी रोशनी होती है, उसकी आँखों में समा जाती है। इस तरह बिल्ली और उसकी जैसी आँख वाले दूसरे जानवर, कम से कम रोशनी में भी, जिसमें हमारी और तुम्हारी आँखें काम नहीं करतीं, देख पाते हैं।

करके देखो तो ?

१. नीचे का चित्र देखो ! इस में छः कांच के गिलास एक कतार में रखे हुए हैं। हरेक गिलास की संख्या दी गई है। दूसरे, चौथे और छठे गिलास में शरबत भरा हुआ है। पहले, तीसरे और पांचवें गिलास में कुछ नहीं है। याने एक खाली गिलास और उसकी बगल में एक शरबत वाला गिलास, इस तरह जोड़ियां बनी हुई हैं। अच्छा, क्या अब तुम एक ही गिलास को उसकी जगह से हटा कर, ऐसा कर सकते हो कि तीनों खाली गिलास एक तरफ और शरबत वाले तीनों गिलास दूसरी तरफ हो जाएं !

* * * *

२. मामूली शकर की एक डली लेकर, उसको सुलगा कर कपूर की तरह जला सकते हो ! तुम से न हो सके तो उलट कर देखो !

कैसे करोगे ?

१. दूसरा गिलास उठा लो और उस में जो शरबत है उसे पांचवें गिलास में डाल कर यथा-स्थान रख दो ! फिर देखो !

२. थोड़ी सी सिगरेट की राख ले लो ! शकर की डली पर डाल कर उसे अच्छी तरह जम जाने दो। फिर जहां वह राख लगी हो उस जगह सलाई से आग सुलगा दो। तब देखोगे कि शकर की डली पहले तो धीरे धीरे सुलगती है, मगर पीछे बत्ती की तरह जल कर खासी रोशनी देने लगती है।

पुराने जमाने में किसी गाँव में करिया डाइन नाम की एक डाइन रहती थी। लोग कहा करते थे कि वह मन्तर-तन्तर करके आदमियों को भेड़-बकरी बना देती है और पका कर खा जाती है।

धीरे-धीरे यह बात एक राक्षस के कानों तक पहुँच गई। उसने सोचा—'हमेशा मनुष्य का मांस खाने वाली इस डाइन का मांस, न जाने और कितना स्वादिष्ट होगा!' यह सोच कर उसने उस डाइन को पकड़ कर पाताल ले जाने और वहां फ़ुरसत से उसे चट कर जाने का इरादा किया।

तुरंत उसने एक सुन्दर राजकुमार का भेस बनाया और करिया डाइन के घर आया। 'करिया डाइन! करिया डाइन! तुम्हारे बारे में संसार भर में अजीब अजीब बातें फैली हुई हैं। वाह! तुम कितनी सुन्दर हो! मैं तुम्हें अपनी रानी बना लेना चाहता हूँ। बोलो, क्या कहती हो?' उसने खूसट डाइन से कहा।

डाइन अपना पोपला मुँह खोल कर 'ही-ही-ही' कर हँसने लगी। 'तुमने सोचा तो ठीक! लेकिन पहले बता दो; मुझे कन्धे पर चढ़ा कर अपने गाँव ले जा सकोगे?' उसने राक्षस से पूछा।

'इस में क्या लगा है! आओ, मेरे पीठ पर चढ़ जाओ! तुम्हें पल भर में अपने यहां ले जाऊँगा।' राक्षस ने जवाब दिया।

'अच्छा, चलो!' करिया डाइन ने कहा। राक्षस ने डाइन को अपने पीठ पर चढ़ा लिया। तीन कदम जाने के बाद उसने ज़मीन पर लात मारी। तुरंत ज़मीन फट गई और पाताल जाने के लिए राह बन गई।

राक्षस नीचे उतरने लगा। वह बरसों दिन-रात चलता ही गया। लेकिन बहुत कोशिश करने पर भी करिया डाइन को

श्री रामपाल

अपने पीठ से न उतार सका। राक्षस पस्त हो गया। वह अब सोचने लगा—'भगवान करे! किसी तरह यह बला मेरे पीठ से उतर जाय! मैं और कुछ नहीं चाहता।'

अंत में उसने जाकर राक्षसों के राजा से विनती की—'देव! किसी तरह इस दुष्टा को पीठ से हटाने का उपाय बता दीजिए! मैं आपका एहसान कभी नहीं भूलूँगा।'

तब राक्षस-राज ने सलाह दी—'अरे भाई! इतनी जल्दी हार मान बैठे! एक डाइन से इतना डरने लगे! सारी ज़ात की नाक कटा दी तुमने! अच्छा, सुनो! इसे ले जाओ और जहाँ से लाए हो वहीं छोड़ आओ!'

बेचारा राक्षस करिया डाइन से अपना पिंड छुड़ाने के लिए फिर पृथ्वी को लौटने लगा। राह में उसे एक उजड्ड ग्वाला दिखाई दिया। उसने राक्षस को देख कर कहकहे मारते हुए कहा—'वाह भैया! यह गधे का बोझ कितने दिन से ढो रहे हो!'

राक्षस चौंक पड़ा। उसने सोचा—'यह तो बड़ा गुरु-घन्टाल मालूम होता है! नहीं तो इसे कैसे मालूम हो गया कि मैं इस खूँसट डाइन को बहुत दिन से ढो रहा हूँ!' वह ग्वाले से बोला—'भैया! मेरी इतनी सी भलाई कर दो! मैं तुम्हारा एहसान कभी नहीं भूलूँगा।' यह कह कर उसने अपनी आफत ग्वाले से कह दी।

'अरे! इतनी सी बात है! लाओ, उसे उठा कर मेरे पीठ पर रख दो!' ग्वाले ने कहा।

'जान बची भगवान की कृपा से!' राक्षस ने सोचा। उसने किसी तरह करिया डाइन को ग्वाले के पीठ पर चढ़ा दिया और सुख की साँस लेने लगा। ग्वाला डाइन को उठा कर दक्खिन की ओर दौड़ने लगा।

'बेवकूफ ग्वाला आ गया चकमे में! अब डाइन उसका पिंड नहीं छोड़ेगी!' राक्षस ने सोचा और ग्वाले की भेड़ों को

हांक कर लौटने लगा। लेकिन वह थोड़ी ही दूर गया था कि ग्वाले की पुकार सुनाई दी! 'क्यों भैया! डाइन को मुझे सौंप कर चुपके से भेड़ों को हाँक ले जाना चाहते हो!' वह हँसते हुए कह रहा था।

राक्षस उसकी बात अनसुनी करके पूछने लगा—'अरे! इतनी जल्दी डाइन से पिंड कैसे छूट गया?' 'यह भी कोई मुश्किल काम है! नज़दीक ही एक तालाब है जिसमें अक्सर लोग डूब मरा करते हैं। डाइन को उठा कर उसमें फेंक आया। लेकिन वह थी बड़ी चालाक! कंबल पकड़ कर छोड़ती ही न थी! मैंने सोचा—'कम्बल जाय भाड़ में! उसे कम्बल सहित तालाब में फेंक आया!' ग्वाले ने जवाब दिया।

तब राक्षस ने ग्वाले को बहुत सराह कर कहा—'भैया! सुनो, मैं कल जाकर भूत बन कर इस देश की राजकुमारी पर सवार हो जाऊँगा। ऐसा टोना करूँगा कि उसका दिमाग ही फिर जाय। तब राजा डिंढोरा पिटवा देंगे कि जो राजकुमारी को चङ्गी कर देंगे, उन्हें बड़ा भारी ईनाम दिया जाएगा। लेकिन यह किसी से न हो सकेगा। आज से ठीक तीस दिन बाद तुम आकर राजकुमारी के कान में कहना—'अजी! मैं ग्वाला हूँ!' बस, मैं उसे छोड़ कर चला जाऊँगा और वह चङ्गी हो जाएगी। जरूर ईनाम तुम्हें मिल जाएगा।'

ग्वाला ठीक तीस दिन बाद राजा के किले में गया। जहाँ देखो वहीं राजकुमारी के विचित्र रोग की चर्चा हो रही थी। लोग कहते थे—'बेचारी राजकुमारी पागल हो गई। राजा का डिंढोरा है कि जो उन्हें चङ्गी कर देगा, उसे आधा राज और राजकुमारी मिल जाएगी।'

जब ग्वाला राज-महल के नज़दीक गया तो उसने देखा कि बड़े-बड़े वैद्य-हकीम,

ओझा-मांत्रिक हार मान कर, सर झुका कर लौटे जा रहे हैं।

ग्वाला बड़ी शान से सीधे अंदर चला गया। राजकुमारी बाल बिखेरे फर्श पर लोट रही थीं और राजा भी वहीं बैठे हुए थे।

ग्वाले ने जाकर राजकुमारी के कान में कह दिया—'अजी! मैं ग्वाला हूँ!' तब राक्षस ने जो राजकुमारी पर सवार था, उसे छोड़ दिया। वह जाते वक्त ग्वाले से कह गया—'देखो! इस बार मैंने तुम्हारी लाज रख ली। लेकिन बार बार इस तरह न करना। नहीं तो, कच्चा ही चबा जाऊँगा।'

तुरंत राजकुमारी चंगी हो गईं। उन्होंने ग्वाले को देख कर लाज से सिर झुका लिया। तुरंत किले में मङ्गल-वाद्य बजने लगे और यह शुभ-समाचार पल में चारों ओर फैल गया। बेवकूफ ग्वाला राजकुमारी का पति और आधे राज का स्वामी बन गया। लेकिन कहानी यहीं खतम नहीं हुई!

* * *

राक्षस को अब राजकुमारियों पर सवार होने की आदत सी हो गई थी। उसने जाकर पड़ोस की और एक राजकुमारी को पकड़ लिया था और उसे बहुत कष्ट दे रहा था। बेचारी का सिर फिर गया था और वह पागलों की सी बातें करने लगी थी। उस राजा ने अनेकों वैद्य-हकीम और ओझा बुलाए। लेकिन कोई फायदा न हुआ। आखिर जब उसे मालूम हुआ कि ग्वाले ने राजकुमारी को चंगी कर दिया तो उसने उसे बुला लाने को दूत भेजा।

जब दूत ने आकर राजा से दामाद को भेजने की बिनती की तो बेचारा ग्वाला बहुत घबरा गया। उसे राक्षस की चेतावनी याद आ गई। 'जी! मैं वास्तव में मन्तर-तन्तर कुछ नहीं जानता। भगवान की कृपा से किसी तरह राजकुमारी चङ्गी हो गयी।

मैं इस मामले में कुछ नहीं कर सकता।' उसने राजा से निवेदन किया।

अब तो राजा बड़े असमन्जस में पड़ गया। क्योंकि पड़ोसी राजा ने दूत के द्वारा कहला भेजा था कि यदि ग्वाले को तुरंत नहीं भेजा गया तो वह सेना सहित आकर लड़ाई छेड़ देगा और उसे जबर्दस्ती पकड़ ले जाएगा। आखिर राजा ने ग्वाले से सभी हालत बता दी। अब कोई चारा न रहा। ग्वाले को इस दूसरी राजकुमारी का इलाज करने के लिए जाना ही पड़ा।

ग्वाले ने पड़ोसी राजा के किले में पहुँच कर देखा कि वहाँ बड़ी खलबली मची हुई है। आने-जाने वाले वैद्यों, हकीमों और ओझाओं का तांता सा बँधा हुआ था। उसे बड़े सम्मान के साथ सीधे राजकुमारी के पास ले जाया गया। ग्वाले ने जाकर चुपके से राजकुमारी के कानों में कहा—'सुनो भैया! तुम ने मेरा बड़ा एहसान किया। इसलिए मैं भी तुम्हारी एक भलाई करने आया हूँ। हमने समझ लिया था कि करिया डाइन मर गई। लेकिन मालूम होता है, वह नहीं मरी। मुझे अभी मालूम हुआ है कि वह तालाब से सही-सलामत ऊपर आ गई और तुम्हें खोजती हुई आ रही है।'

ग्वाले की बात पूरी भी नहीं हुई। करिया डाइन का नाम सुनते ही राक्षस 'बाप रे बाप!' कह कर जो भागा तो सीधे पाताल जाकर ही दम लेने लगा।

और क्या था! राक्षस के छोड़ कर जाते ही राजकुमारी चङ्गी हो गई। उसने अपनी बड़ी-बड़ी आँखों से एक बार ग्वाले की तरफ ताका और लाज से सिर झुका लिया। राजा ने भी वचन के अनुसार राजकुमारी का व्याह ग्वाले से करके उसे आधा राज दे दिया। इस तरह वह ग्वाला अपनी चतुराई के कारण दो राजकुमारियों का पति बन गया।

बताओ तो ?

★

१. पौराणिक विष, चार अक्षर, पहले दोनों अक्षर काटने से किसान का औजार, पहला और तीसरा अक्षर काटने से रत्न, और तीसरा अक्षर मात्र काटने से पशु-वध बन जाता है।

२. तीन अक्षर, वीर-रस के सुप्रसिद्ध कवि, और एक अर्थ गहना होता है।

३. बिहार की राजधानी का एक पुराना नाम, चार अक्षर, राजा का घर।

४. संस्कृत 'किरातार्जुनीय' के प्रसिद्ध कवि, तीन अक्षर, पहला अक्षर काटने से सूरज, आखिरी अक्षर काटने से बोझा बनता है।

५. बम्बई प्रदेश का एक नगर, किसी समय प्रसिद्ध व्यापार-केन्द्र, तीन अक्षर, अर्थ मुखड़ा। पहला अक्षर काटने से निमग्न, आखिरी अक्षर काटने से वीर, और बीच का अक्षर काटने से धागा बनता है।

बता न सको तो जवाब के लिए ५६-वाँ पृष्ठ देखो !

पूरा करो !

★

नीचे दाईं ओर कुछ ऐसे शब्द दिए गए हैं जिन में हरेक के अंत में 'कार' आता है। समझ लो कि 'कार' के आगे जितने नुक्ते हैं उतने अक्षर वहाँ से गायब हैं। शब्द को पूरा करो ! पूरे शब्द का जो माने होता है वह बाईं ओर दिया गया है। पूरा करने के बाद ऐसे ही कुछ और शब्द सोच कर लिख लेना।

१. तरह . कार
२. चितेरा . . कार
३. संबन्ध . . कार
४. दूसरों की भलाई . . . कार
५. वारिस का हक . . . . कार
६. बिना अधिकार . . . कार
७. एक फूल . . कार
८. सजावट . . कार
९. मंजूर . कार

पूरा न कर सको तो जवाब के लिए ५६-वाँ पृष्ठ देखो !

गुदगुदी

एक माता अपने बच्चे के साथ आ रही थी। एक आदमी ने बच्चे को देख कर कहा—'बड़ा होनहार मालूम होता है।' तुरन्त बच्चे ने जवाब दिया—'यह बात मेरी माँ से छिपी नहीं है।'

—+—

एक आदमी ने लड़के को अकेले खेलते देख कर पूछा—'तुम्हारा दोस्त कहाँ है?' 'वह तो चला गया।' 'तो तुम अकेलापन महसूस नहीं करते?' 'महसूस तो करता हूँ।' लड़के ने जवाब दिया। लेकिन जब उसे याद आया कि दोस्त ने उसे कितनी बार पीटा था तो बोला—'लेकिन यह बुरा नहीं लगता।'

—+—

किसी आदमी का लड़का खो गया। उसने पुलिस को खबर दे दी। पुलिस वाले नजदीक के जङ्गल में ढूंढने चले तो एक लड़का भी साथ हो लिया। साँझ तक वह साथ रहा। अन्त में पता चला कि उसी की खोज हो रही थी।

—+—

एक वक्ता ने बड़ी देर तक व्याख्यान झाड़ने के बाद पूछा—'कोई सवाल?' 'कितने बजे हैं?' एक श्रोता ने पूछा।

—+—

सुन्दर नाम के लड़के ने अपने स्कूल को फोन करके कहा—'सुन्दर बीमार है। आज वह स्कूल नहीं जा सकेगा।' 'अच्छा, आप कौन बोल रहे हैं?' अध्यापक ने उधर से पूछा। 'मेरे पिताजी बोल रहे हैं।' सुन्दर बोला।

इधर-उधर की—

अजीब आवाज

कुछ दिन पहले न्यूआर्क-वासियों ने रेडियो में एक अजीब आवाज़ सुनी। कोई अच्छा प्रोग्राम था और बहुत से लोग सुनने बैठे हुए थे। लेकिन उन्हें प्रोग्राम के बदले 'खुर-खुर' की ज़ोरदार आवाज़ सुनाई दी। सब लोग ताज्जुब में पड़ गए। वे जान न सके कि यह काहे की आवाज है। कुछ लोगों ने पुलिस में खबर दे दी। पुलिस वालों ने जब आकर देखा तो हँसते-हँसते पेट फूलने लगा। स्टूडियो में वक्ता महोदय शब्द-ग्राही यन्त्र के सामने ज़ोर से खुर्राटे ले रहे थे।

तकदीर का खेल

'लुई कार्सो' नाम के एक व्यक्ति पर सारे सङ्कट एक साथ टूट पड़े थे। उसका दो साल का बच्चा बहुत बीमार था। स्त्री का प्रसव-काल था। हाथ में कानी-कौड़ी न थी। क्या करे बेचारा? आखिर उसने व्यापारी-गण को कर्ज देनेवाली एक सहयोग-संस्था में जाकर ५६० डालर का कर्ज लिया। कुछ दिन बाद जब वह कर्ज चुकाने गया तो उस संस्था के अधिकारियों ने कहा—'कर्ज तो चुक गया।' अन्त में पूछने पर मालूम हुआ कि उस संस्था में कर्ज लेने वालों की जब दस लाख की संख्या पूरी हो जाती है तो दूसरे दस लाख में के पहले कर्ज-दार को कर्ज की रकम ईनाम के तौर पर दे दी जाती है।

रंगीन चित्र-कथा, तीसरा चित्र

उसके बाद वे हाथ कृपासेन को एक सजे-धजे, सुन्दर कमरे में ले गए। उसको कीमती कपड़े पहनाए गए और उसका खूब बनाव-सिंगार किया गया। उस कमरे की सी सज-धज कृपासेन ने पहले कभी नहीं देखी थी। इतने में और कुछ हाथ आए और उसे एक बहुत ही लम्बे-चौड़े कमरे में ले गए। वहाँ एक बहुत बड़ी दावत का इन्तजाम था। बीचों-बीच दो सुनहरी गद्दियाँ थीं जो राजा-रानियों के बैठने लायक थीं। उन हाथों ने कृपासेन को ले जाकर उनमें से एक में बिठा दिया। वह अचरज करने और सोचने लगा कि दूसरी गद्दी पर कौन बैठेंगे? इतने में बिल्लियों का एक बहुत बड़ा जुलूस उस कमरे में आ गया।

एक बड़ी सुन्दर बिल्ली, जिसका मुँह सुनहरे घूँघट में छिपा हुआ था, आकर कृपासेन की बगल वाली गद्दी पर बैठ गई। तब सभी बिल्लियाँ अपनी-अपनी कुर्सियों पर बैठ गईं। कृपासेन की बगल में बैठी हुई बिल्ली बड़े कीमती कपड़े पहने हुई थी। वह सबकी रानी मालूम होती थी। दावत शुरू हुई। दावत के बाद बिल्लियों की रानी ने कृपासेन से कहा—'प्यारे कृपासेन! मैं इतने दिनों से तुम्हारी ही राह देख रही थी।' इतना कह कर उसने उसे एक कमरे में ले जाकर एक तस्वीर दिखाई। उसे देख कर कृपासेन को बहुत ताज्जुब हुआ। क्योंकि वह उसी की तस्वीर थी। उसके बाद नाच-गान होने लगा। बड़ी चहल-पहल थी। लेकिन कृपासेन का मन इसमें न लगा। उसे उदास बैठा देख कर बिल्लियों की रानी ने वजह पूछी। तब कृपासेन ने बताया कि वह संसार में सब से छोटी कुत्ते की तस्वीर चाहता है। 'इतनी सी बात के लिए सोच करते हो?' यह कह कर बिल्लियों की रानी ने उसे एक तस्वीर मँगवा कर दी। वह संसार में सब से छोटी कुत्ते की तस्वीर थी। दूसरे दिन कृपासेन उठ कर अपने राज को लौट चलने लगा। बिल्लियों की रानी ने बहुत अनुरोध किया कि यहीं रह जाओ! लेकिन कृपासेन ने न माना। फिर लौट आने का वचन देकर, बिदा लेकर वह अपने घर लौट चला। बेचारी बिल्लियों की रानी को बहुत दुख हुआ।

चन्दामामा पहेली

बाएँ से दाएँ :

1. एक संत कवि
6. अंगार
7. शिवजी
8. कला
10. विनती
11. प्रमाण-पत्र
12. घड़ि
14. तीर
16. मात्र
18. तुलसी की एक पुस्तक
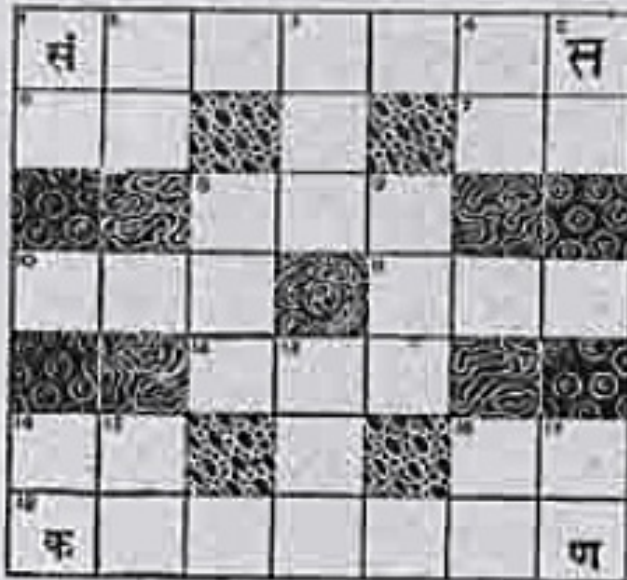
ऊपर से नीचे :

1. साथ
2. भीगा हुआ
3. उजाड़
4. जलन
5. तालाब
8. मालिक
9. जीभ
13. जीभ का गुलाम
14. सदा
15. सूरज
16. डर
17. युद्ध

फोटो - परिचयोक्ति - प्रतियोगिता

मई - प्रतियोगिता - फल

*

मई के फोटो के लिए निम्नलिखित परिचयोक्तियाँ चुनी गई हैं। इनके प्रेषक को १०) का पुरस्कार मिलेगा।

परिचयोक्तियाँ :

पहला फोटो : यंत्र-वाद्य
दूसरा फोटो : वाद्य-यंत्र

प्रेषक : खुशालचन्द बी. शाह, गदग.

ये पुरस्कृत परिचयोक्तियाँ प्रेषक के नाम-सहित मई के चन्दामामा में प्रकाशित होंगी। मई के अङ्क के प्रकाशित होते ही पुरस्कार की रकम भेज दी जाएगी।

जून की प्रतियोगिता के लिए बगल का पृष्ठ देखिए।

एक अनिवार्य सूचना :

परिचयोक्तियाँ बगल के पृष्ठ के कूपन पर ही लिख कर भेजनी चाहिए। तीन पैसे का स्टाम्प लगा कर बुक-पोस्ट में भेजी जा सकती हैं। साथ में कोई चिट्ठी न हो।

फोटो-परिचयोक्ति-प्रतियोगिता

जून १९५३ :: पारितोषक १०)

★ ऊपर के फोटो जून के अङ्क में छापे जाएँगे। इनके लिए उपयुक्त परिचयोक्तियाँ चाहिए।

★ परिचयोक्ति फोटो के उपयुक्त हो। तीन-चार शब्द से ज्यादा न हो। पहले और दूसरे फोटो की परिचयोक्तियों में परस्पर सम्बन्ध हो। परिचयोक्तियाँ, पूरे नाम और पते के साथ कूपन पर ही लिख कर भेजनी चाहिए। १०-अप्रैल के अन्दर ही हमें पहुँच जानी चाहिए।

★ प्राप्त परिचयोक्तियों की सर्वोत्तम जोड़ी के लिए १०) का पुरस्कार दिया जाएगा।

★ परिचयोक्तियाँ भेजने का पता:

फोटो-परिचयोक्ति-प्रतियोगिता
चन्दामामा प्रकाशन
वडपलनी :: मद्रास-२६.

→ चन्दामामा-फोटो-परिचयोक्ति-प्रतियोगिता-कूपन ←

पहले फोटो की परिचयोक्ति .... दूसरे फोटो की परिचयोक्ति ....

भेजनेवाले का नाम ....

पूरा पता ....

अपनी बात

'शोभित चन्द्र'

सभी ग्रहों का राजा सूरज
ध्रुवतारा तारों का राजा।
सब देशों का राजा भारत
कलकत्ता शहरों का राजा।

फूलों का राजा गुलाब है
बरगद है पेड़ों का राजा।
बागों का राजा नन्दनवन
लँगड़ा आम फलों का राजा।

कीड़ों का राजा है भौंरा
मगरमच्छ मगरों का राजा।
शेर सभी पशुओं का राजा
श्वेत हंस चिड़ियों का राजा।

सरिताओं की रानी गङ्गा,
है वसन्त ऋतुओं का राजा।
रङ्ग सफेद रङ्गों का राजा
हिमगिरि सब शैलों का राजा।

पर मैं घर वालों का राजा,
सब पर हुक्म चलाया करता।
जो इच्छा होती बाबा से,
दादी से मँगवाया करता।

चन्दामामा पहेली का जवाब :

सं	त	क	बी	र	दा	स
न	र		रा		ह	र
		हु	न	र		
आ	र	जू		स	न	द
		र	च	ना		
श	र		टो		भ	र
क	वि	त	रा	मा	य	ण

'बताओ तो?' का जवाब :

१. हलाहल २. भूषण ३. राम-राज्य
४. भारवि ५. सूरत

'पूरा करो' का जवाब :

१. प्रकार २. चित्रकार ३. सरोकार
४. परोपकार ५. उत्तराधिकार ६. अनधिकार
७. कर्णिकार ८. अलङ्कार ९. स्वीकार

Printed by B. NAGI REDDI at the B. N. K. Press Ltd., Madras 26 and Published by him from Chandamama Publications, Madras 26. Controlling Editor: SRI CHAKRAPANI

Photo by Pranlal K. Patel

पुरस्कृत
परिचयोक्ति

पालने का ढंग

प्रेषक :
संतोषकुमार जैन, आगरा

CHANDAMAMA (Hindi) APRIL 1953 Regd. No. M. 5452

रङ्गीन चित्र - कथा, चित्र — ३